

ललद्यद

संकलन एवं अनुवादः
शंभुनाथ भट्ट "हलीम"


580
1978
5·25
Rohri Jammu

ललद्यद

Acc No:-580

[लल्लेश्वरी के कश्मीरी वाखों का हिन्दी अनुवाद]

संकलन एवं अनुवाद
शंभुनाथ भट्ट 'हलीम'

अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू



जे० एण्ड० के० अकादमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़
जम्मू द्वारा प्रकाशित
© : अकादमी
प्रथम संस्करण : 1976
टैगोर प्रिंटर्स जालन्धर सिटी
मुद्रित द्वारा

मूल्य: ५ रु० २५ पैसे

प्रस्तावना

कश्मीरी भाषा की आदि-कवयित्री योगेश्वरी ललद्यद (लल माता) के वचनामृत (वाखों) का प्रस्तुत संग्रह मुख्यत: उस संकलन पर आधारित है, जिसका संपादन एवं टिप्पणी-सहित उर्दू पद्यानुवाद प्रो० जयलाल कौल व स्व० प्रो० नन्द लाल कौल 'तालिब' ने जम्मू-कश्मीर राज्य कल्चरल अकादेमी के लिए किया है। योग्य विद्वानों ने एक विस्तृत और सारगर्भित भूमिका लिखकर 'ललद्यद' की जीवनी और उनके विचार-दर्शन पर भी प्रकाश डाला है और (अप्रयुक्त पुरातन) शब्दों की सार्थ सूची जोड़ कर पुस्तक की उपादेयता भी बढ़ाई है,। हिन्दी रूपान्तर करते हुए मैंने इस उपलब्ध सामग्री का यथा निर्देश सहारा लिया है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

इस संग्रह में कुछ अन्य 'वाख' सम्मिलित करने का लोभ संवरण नहीं कर सका। इसका कारण केवल यह कि पाठकगण कश्मीरी साहित्य की इस अमरवाणी का अधिकाधिक लाभ ले सकें। पाद-टिप्पणियों में यत्र-तत्र वाखों के पाठ-भेद भी दिये हैं। साथ ही वाखानुक्रमणिका जोड़ दी है, ताकि पाठक आसानी से यह जान सकें कि इस संकलन में कौन-कौन से वाख संकलित हैं।

यहां पर इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि उर्दू का पद्यानुवाद करते हुए ऐसी शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य था, जो 'वाखों' के मूल शब्दों का अर्थ वहन कर सकता। अर्थ-गांभीर्य के कारण उनके पर्याय क्लिष्ट शब्दों में ही मिल सकते थे। जैसा कि उर्दू के संपादकों ने भूमिका में स्वीकारा भी है कि..."एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कर के यथावत् अर्थ-वहन करना आसान नहीं, विशेषत: जबकि विषय पद्यबद्ध और गहन रहस्यपूर्ण हो।...योग की शब्दावली के लिए उर्दू की तंग-दामानी (अकिंचनता) और ऐसी ही अन्य कठिनाइयों के कारण यह कार्य और भी दुष्कर हो जाता है...।" किन्तु हिन्दी रूपान्तर में यह कठिनाई उतनी अलंघ्य नहीं, जितनी उर्दू में रही है। उसका कारण एक यह है कि अधिकतर 'वाखों' की भाषा ऐसी कश्मीरी में है, जो संस्कृतगर्भित है। हो सकता है, तब जन-भाषा (कश्मीरी)

का प्रचलित रूप ही ऐसा रहा हो अथवा यह भी संभव है कि ललद्यद ने विषयानुकूल भाषा एवं शब्दावली का प्रयोग किया हो । त्रिक दर्शन एवं शैव मत के जिन रहस्यों का प्रतिपादन 'वाखों' में किया गया है, उनका पठन-पाठन तब संस्कृत में ही प्रचलित था । लल्लेश्वरी ने योग की इसी शब्दावली का सुगम जन-भाषा में प्रयोग कर के अपना आशय स्पष्ट किया है । इसलिए हिन्दी अनुवाद करते हुए मैंने यह प्रयत्न किया है कि मूल शब्द यदि संस्कृतनिष्ठ (तत्सम) है, तो वही बना रहे । इससे पाठकों को सही अर्थ समझने के अतिरिक्त 'वाखों' में शब्द-निरूपण का सौंदर्य-बोध भी होगा और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कश्मीरी और हिन्दी के समन्वय का भी परिचय मिल जायेगा ।

इसका अर्थ यह न लिया जाये कि कश्मीरी भाषा का उद्‌गम संस्कृत है और न ही यह कि 'लल'-वाखों का वर्तमान रूप पूर्णत: पुरातन है । कश्मीरी भाषा का उदय और विकास विषयान्तर है और संक्षेप से उसपर यहां कुछ कहना अप्रासंगिक होगा । 'वाखों' की धरोहर हम तक जनश्रुति से आ पाई है । स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में मूल-रूप प्रक्षेप और परिवर्तन-परिवर्द्धन से अवश्य कुछ बदला होगा, इसलिए यह कहना दुस्साहस है कि 'वाख' नितान्त उसी आकार-प्रकार में हैं, जिसमें वे ललद्यद के मुख से प्रस्फुटित हुए होंगे । हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि धर्म-परायण अनुगामियों ने परंपरा से 'वाखों' की यह बहुमूल्य निधि यथासंभव श्रद्धापूर्वक सुरक्षित रखने की चेष्टा की है । यह कोई अनहोनी बात नहीं । इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है ।

जो भी हो, कश्मीरी भाषा का साहित्य-गगन जिन जाज्वल्यमान नक्षत्रों से उद्‌भासित है, उनमें ललद्यद को 'भोर के तारे' की पदवी प्राप्त है । उन्हीं से इस साहित्य के प्रभात की सूचना मिलती है और गर्व की बात है कि ललद्यद संतों की उस परम्परा में पहली योगेश्वरी थीं, जिन्होंने मध्यकालीन भारत में सूफ़ीवाद, रहस्यात्मक समन्वयवाद और मानववाद का 'वाखों' में प्रतिपादन किया । (संत कबीर गुरु नानक, संत तुलसीदास और मीरांबाई का अवतरण उनके पश्चात् हुआ है) । इस दृष्टि से 'लल-वाखों' का महत्व और भी बढ़ जाता है, विशेषत: अब, जबकि सब मतवादी सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं राजनैतिक धरातल पर एक ऐसी आधारशिला की खोज में लगे हैं, जिसपर मानववाद का महल खड़ा किया जा सके । संभवत: भारतीय संतों में 'ललद्यद' ही एक मात्र ऐसी साधिका हैं, जिसके नाम पर कोई पंथ या मत नहीं चला । उनका शब्दामृत सबके लिए एक जैसा है। इससे मेरा यह आशय कदापि नहीं कि अन्य संतों व सूफ़ियों की महत्ता कुछ कम है । वे भी महान् हैं और

उन्होंने भारत की मानसिक एकता को बनाये रखने में महत्पूर्ण योगदान दिया है। कितने हर्ष की बात है कि ललद्यद के 'वाखों' की अनुगूंज भारत के अन्य भागों में भी पाई जाती है। इससे सांस्कृतिक एवं साहित्यिक एकता को बल मिलना अनिवार्य है।

आशा की जा सकती है कि हिन्दी का यह रूपान्तर पाठकों को अनेक लाभ प्रदान करेगा। ज्ञान-वृद्धि के साथ ही यदि यह कृति शोधकार्य में दिलचस्पी रखने वालों को भी इस ओर आकृष्ट कर अनुसंधान के लिए प्रेरित कर सके तो यह बहुत बड़ी सिद्धि होगी। यद्यपि लल-साहित्य पर बहुत कुछ लिखा गया है, फिर भी यह विषय इतना विशद और गंभीर है कि इसपर जितना अधिक लिखा जाय, कम है। भाषा विज्ञान, दर्शन-विवेचत, योग-व्याख्यान, समन्वयवाद, संतुलन और समीक्षा, ऐतिहासिक महत्व, धर्मनिरूपण आदि-आदि अनेक विषय हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में 'लल-वाखों' पर विचार किया जा सकता है। प्रस्तुत प्रयास यदि ऐसी गवेषणा का किंचित प्रेरक बने तो यह सफल माना जायगा।

मूल कश्मीरी के पाठ के लिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कश्मीरी में कुछ ऐसे स्वर हैं, जिनके उच्चारण के लिए देवनागरी के स्वर पर्याप्त नहीं। इस अभाव की पूर्ति के लिए कुछ सांकेतिक चिह्न अपनाने अनिवार्य थे। तभी मूल 'वाखों' का यथा-संभव सही उच्चारण हो सकता था। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने इस सम्बन्ध में कुछ चिन्ह निश्चित भी किये हैं। किंतु टाइप के अभाव के कारण उनका उपयोग यहाँ पर पूर्णतः नहीं किया जा सका है। कुछ संकेत-चिह्न अवश्य लिये हैं, मगर वे अपेक्षित स्वरों के सही पाठ में पूरी तरह सहायक नहीं होते। इसके लिए विवश हैं।

अन्त में कश्मीर की 'कल्चरल अकादमी' का अभार-प्रदर्शन किये बिना नहीं रह सकता, जिसने मुझे यह कार्य सम्पन्न करने का सुयोग प्रदान किया।

—शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम'

नई दिल्ली

19-8-1972

विषय-सूची

विषय-सूची

भूमिका

यह बात जितनी आश्चर्यजनक है, उतनी ही अर्थपूर्ण भी कि संत एवं सूफ़ी चाहे किसी भी देश में जन्मे हों, सभी एक-सी बात कह गये हैं। जो कुछ बखान उन्होंने किया है, उससे ज्ञात होता है कि भाषा और वर्णन-शैली विभिन्न होते हुए भी उनके भावों एवं विचारों में समरसता और एकता पाई जाती है। इस अभिन्नता का एक महत्वपूर्ण और विचारणीय पहलू यह है कि विश्व के संत और सूफ़ी यद्यपि विभिन्न देशों में उत्पन्न हुए, जुदा-जुदा भाषाएं बोलते थे और उनका जन्मगत धर्म भी एक-दूसरे से विभिन्न था तथापि देश-काल, धर्म व भाषा का यह भेद होते हुए भी उनका भावार्थ आपस में मिलता-जुलता है और उनकी अनुभूतियां एक-सी हैं। इस दृष्टि से मानना पड़ता है कि उनकी भावभूमि में कुछ-न-कुछ वास्तविकता है, जो मात्र भ्रांतियों की उलझन का परिणाम नहीं है। अत: यह कहना ग़लत न होगा कि उनकी विचार-शैली ने मानव-जीवन को अकारण प्रभावित नहीं किया।

ऐसे ही आप्त जनों में लल-द्यद की भी गणना की जाती है। वह चौदहवीं शती के मध्यकाल में प्रकट हुईं। यह सदी अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्व रखती है।

एक इसलिए कि इस शताब्दी में कश्मीर में इस्लाम का स्पष्टत: प्रादुर्भाव हुआ और वह तेज़ी से फैलने लगा। यद्यपि संस्कृत कुछ देर के लिए पूर्ववत् राजभाषा बनी रही तथापि इस्लाम के अनुयायियों के आगमन पर उसके साथ-साथ फ़ारसी का प्रयोग भी होने लगा और नित्यप्रति उसके प्रचार-प्रसार का क्षेत्र बढ़ता गया। इसका परिणाम यह निकला कि उस समय संस्कृत की महत्ता घटती गई। चूंकि फारसी अभी तक पूर्णत: सर्वसाधारण में प्रचलित नहीं हुई थी, अतएव कश्मीरी भाषा भावाभिव्यंजन का साधन बनने लगी। धीरे-धीरे इस भाषा के साहित्य का श्रीगणेश हुआ। इसी साहित्य की प्रथम पंक्ति में ललद्यद का नाम सर्वोपरि दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने ऐहिक समस्याओं, वेदान्त के रहस्यों, योगादि साधनों और आध्यत्मिकता के आकाश में उड़ान भरने की जिज्ञासा को इसी भाषा में व्यक्त किया है।

दूसरे यह कि इसी शताब्दी में सामान्य एवं आध्यात्म-सम्बन्धी परम्पराओं में नये तत्त्वों की पर्याप्त वृद्धि हुई। जहां एक ओर इस्लाम का प्रचार तीव्र गति से हो रहा था, वहीं पुरानी परम्परा भी साथ-साथ जारी थी। शताब्दियों पूर्व कश्मीर बौद्ध मत् का प्रसिद्ध विद्या एवं कार्य-क्षेत्र रह चुका था। कालान्तर में जब बौद्ध धर्म का प्रभाव घट गया और भारत में वेदान्त को प्रभुता प्राप्त हुई तो नवीं शती के आरम्भिक काल में यहां एक नये दर्शन ने जन्म लिया, जो 'त्रिक' या 'शैव सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कश्मीर में इस्लामी राज्य स्थापित होने के उपरान्त जब इस्लामी विद्या एवं साहित्य तथा संस्कृति व सभ्यता का प्रचलन हुआ, तब बौद्ध धर्म और शैव सिद्धान्त की ये परंपराएं अभी प्रचलित थीं। इससे मुस्लिम सूफियों और संतों की परंपराओं और साधना-विधि में पारस्परिक मेलजोल अनिवार्यत: बढ़ता गया। इस समन्वय का प्रभाव उन सूफ़ियों पर पड़ा, जो धरती के इस खण्ड पर जन्मे, जिनको 'ऋषि' या 'बाबा' कहते हैं। दाऊद मिशकाती ने अपनी कृति 'इसरारूल-अबरार' में (जिसकी एक पाण्डुलिपि स्थानीय राजकीय अनुसंधान विभाग में मौजूद है) इस वक्तव्य का अनुमोदन किया है। इस बात का उल्लेख 'आईने अकबरी' और सर वाल्टर लारेंस की पुस्तक 'कश्मीर घाटी' में भी पाया जाता है। इनके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में सर रिचर्ड टेम्पल अपनी पुस्तक 'ललवाख' में लिखते हैं—

"यद्यपि लल हिन्दु थी और शैवमत की अनुयाई, और उसकी भावभूमिका स्पष्टत: उसकी अपनी ही आस्थाओं का प्रतीक थी, तथापि उसपर सूफ़ियों की उस शिक्षा का बहुत प्रभाव रहा है जो लगभग हिन्दुओं के उपनिषदों का दर्शन है।"

वर्तमान काल में यद्यपि इन ऋषियों और बाबा-सूफ़ियों की आश्रम-व्यवस्था कायम नहीं रही है, तथापि ज्ञान एवं कर्म-समन्वय के उदाहरण अब भी आस-पास के परगनों और ग्रामों में उपलब्ध हैं और इसका प्रभाव हमारे सूफ़ी कवियों की वाणी में अब तक मौजूद है। यत: समदमीर (जो बड़गाम तहसील में नम्बलहार के रहने वाले थे और जिनका 10 जनवरी 1959 ई० में निधन हुआ) कहते है—

वोन समदमीरन शास्त्र ह्‌यू, परू ओम सू परू ओम सू।

अर्थात्-'समदमीर ने शास्त्रों की अभिव्यंजन-शैली अपनाई है।

ओम्-सू, ओम्-सू (सोऽ हमस्मि) जपते रहो।'

हिन्दु और मुसलमान सूफ़ी कवियों ने ललद्यद की प्रशंसा में जो कुछ कहा है, उससे भी यही ज्ञात होता है कि वे भी उन्हीं के भावों और विचारों का प्रतिनिधित्व

करते हैं और वास्तव में सब अपने-अपने ढंग से एक ही प्रकार की साधना के अनुगामी हैं ।

प्रसिद्ध साधक शम्स फ़क़ीर, जो सन् 1843 ई० में पैदा हुए और जिनके काव्यामृत का रसास्वादन आज तक लोग चटखारे ले-ले कर करते हैं, ललद्यद के विषय में कहते हैं—

कोर ललि इकवट्‌ह आकाश प्रानस, (ज्ञान मिलनाव भगवानस् सूति्)
छ़ल गयि लल-मच् शुराह्‌यार स्रनिस, हल-तमि कोर ज़गि तिकतार तरनस,
व्वपदीश करनि गयि नुन्दरीषानस, रिन्दौ दोपहस ऐनि इर्फ़ान,
छ्य्पि-छ़िपरिस गिन्दुन शाहि हमदानस, (ज़ान मिलनाव भगवानस सूति् ।)

अनुवाद—'लल' ने प्राण और आकाश को एक कर दिया । वह दिखाने को शुराह्‌यार घाट पर नहाने गई, किन्तु वास्तव में वह न केवल वितस्ता नदी के पार हो गई, अपितु क्षिप्रता से उसने समस्त ब्रह्माण्ड को पार किया । वह नुन्दऋषि (शेख नूरूद्दीन नूरानी) को उपदेश देने गई और रिन्दों (ईश्वर-भक्तों) ने इस उपदेश को पूर्णत: अध्यात्मामृत मान लिया । लल ने शाह हमदान के साथ आंख मिचौनी खेली ।"

एक और विख्यात योगी पण्डित परमानन्द कहते हैं :—

"ललीश्वरी ई यूग आस धारान, द्वादशांत मण्डल मंज़् कुनिय ज़ा़्
अनाहत नाद-बिन्द ओम् पर्जनावान, च़्यत् व्यमर्शि दीप्तिमान भगवानो ।
पंच़्दशि जीव कलायि व्यगलावान, शूड़ष सहजकला आँच़्नज़्
पर्णमासी ताम यिथ छस पेवान, च़्यथ व्यर्मशि दीप्तिमान भगवानो ।

अनुवाद :—"लल्लेश्वरी ने योगाभ्यास करते-करते द्वादशांतमण्डल (ब्रह्माण्ड के उच्चतम केन्द्र) में एकान्तवास किया । उसने अनाहतनाद व बिन्दु से ओम् का तत्वज्ञान पा लिया । उसने चन्द्रमा की पंद्रह जीव-कलाएं विगलित कर दीं, यहां तक कि परमशिव की सोलहवीं कला प्रकाशमान होकर प्रकट हुई अर्थात् पूर्णत: यथार्थानुभूति से एकाकार हो गई ।"

ललद्यद की जीवनी पर आवरण पड़ा हुआ है। अत: उनके विषय में प्रामाणिकता के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मात्र कुछ जन-श्रुतियां, परंपरागत किंवदन्तियां और लोकप्रसिद्ध कथानक प्रचलित हैं जो कालान्तर में लिपिबद्ध भी हो चुकी हैं। उनके अनुसार वह (ललद्यद) एक कश्मीरी पण्डित परिवार में श्रीनगर से छ: मील दूर दक्षिणपूर्व की ओर सिंहपुर गांव में उत्पन्न हुई और वहां से दो मील दूर पाम्पुर (पद्मपुर) के प्रसिद्ध कस्बे में ब्याही गई। ससुराल में उनका नाम पद्मावती रखा गया। उनकी सास उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार करती, उनपर नानाविध दोषारोपण करती और उन्हें बदनाम करने में कोई बात उठा न रखती। उनके विरूद्ध उनके पति के कान भरती और मनमुटाव बढ़ाती। उन्हें पेट भर कर खाना न देती। इस पर भी ललद्यद के मुख से कभी उफ़ तक न निकलती।

एक दिन की बात है कि लल के यहां किसी उत्सव के उपक्रम में भोज दिया गया। ललद्यद नदी के घाट पर गई थी। वहां कुछ सखियां उनसे मिलीं। हंसी-हंसी में उन्होंने लल से पूछा—"आज आपने खूब पकवान खाये होंगे।" ललद्यद का उत्तर था—"(होण्ड मांरितन या कोण्ड ललि निलवठ चलि न ज़ांह)—वे भेड़ को मारें या मछली पकायें, लल का भाग पत्थर के अतिरिक्त और कुछ नहीं।" संयोग से ललद्यद के श्वसुर उस समय कहीं पास ही यह संवाद सुन रहे थे। घर जाकर छानबीन की तो ज्ञात हुआ कि जो कुछ लल ने कहा था, सच था। बात यह थी कि उनकी सास थाली में खाना परोसते समय उबले हुए चावलों (भात) के कुछ दानों के नीचे एक सिलबट्टा रख देती थी ताकि थाली भरी हुई दिखाई दे। इससे पूर्व ललद्यद ने कभी इस बात की चर्चा किसी से न की थी। वह हंसी-खुशी सारी कठिनाइयां और कष्ट सहन करती रही।

उस समय की प्रथा के अनुसार ललद्यद ने अल्पायु ही में अपने कुलगुरु सिद्ध बायू से उपदेश लिया। वह प्राय: घर से निकल कर कहीं दूर चली जाती और एकांत में योग साधना में निमग्न रहती। कुछ ही समय उपरान्त साधना में उसे इतनी सिद्धि मिली कि वह अपने गुरु से बहुत आगे निकल गई। इस प्रसंग में उनसे सम्बन्धित अनेक जन-श्रुतियां अब तक लोकप्रसिद्ध हैं। ससुराल में कुछ समय बिताने के बाद अन्तत: एक दिन उसने घर-बार के त्याग का निश्चय किया और एक मस्त कलंदर की तरह अर्द्धनग्न अवस्था में यत्र-तत्र घूमने लगी। स्वयं कहा है—

"ग्वरन वोननम् कुनुय वच़ुन, न्यबर दोपनम अंद्रिय अचुन
सुय गौ ललि म्य वाख़ त-वच़ुन, तवै म्य हयोतुम नंगे नच़ुन ॥ 14 ॥

अर्थ : गुरू ने मुझे एक ही बात कह दी। कहा कि बाहर से भीतर चली जा। मुझ लली ने वही आदेश और उपदेश माना (और) इसी कारण मैं दिगम्बरावस्था में नाचने लगी।"

ललद्यद के नाम से वे कब लोकप्रसिद्ध हुई इसका कारण यह बताया जाता है कि उनके उदर का अधोभाग (जिसे कश्मीरी भाषा में 'लल' कहते हैं) बढ़ गया था और उनके गुप्तांग पर आवरण का काम देता था। कहा जाता है कि इसी स्थिति में उनकी भेंट पहली बार हज़रत अमीर कबीर मीर सैयद अली हमदानी (शाह हमदान) के साथ हुई। कहते हैं, उनका सामना होते ही वह पास के एक नानबाई की जलती हुई भट्टी में जा छिपी, किन्तु थोड़ी ही देर में वहां से चमकदार भड़कीले पहरावे में फिर प्रकट हुई। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा, मैंने जीवन में पहली बार एक मर्द (पुरुष) (अर्थात् ईश्वरभक्त पुरुष) को देख लिया। हज़रत अमीर कबीर सन् 1379-80 ई० से सन् 1385-86 तक कश्मीर में रहे। कहते हैं इस अवधि में ललद्यद का उनसे कई मुलाकातें हुईं यह भी प्रसिद्ध है कि ललद्यद शेख नूरूद्दीन वली से भी (जो चू.ार शरीफ में रहते थे) कई बार मिलीं और उन्हें अपनी योग-सिद्धि एवं अध्यात्म-दर्शन से प्रभावित किया। काफी लम्बी आयु पाकर बिजबिहाड़ा नामक गांव में जामा-मस्जिद के बाहर परलोक को सिधार गईं।

ललद्यद की जीवना के साथ कई अभूतपूर्व करिश्मे और करामातें जुड़ी हुई हैं, यद्यपि वह उनको कोई महत्व नहीं देती थी, अपितु उनको घृणित मानती थीं। उनके विचार में यह प्रक्रिया मदारी का काम है। कहती हैं—

'जल थमवुन हुतवाह् तुरनावुन, उर्ध्वगमन पैरव चृरिथ,

काठधेनि द्वध श्रमावुन, अन्ति सकल कपट चृरिथ ॥ 69 ॥

अर्थ : बहती नदी को रोक लेना, भड़कती हुई अग्नि को बुझा देना, आकाश-गमन करना, काष्ठ-धेनु से दूध दुहना—ये सब कपट चरित हैं।"

ललद्यद निस्सन्देह एक शिव-योगिनी थी।। वह शिव-दर्शन के परिचायक 'त्रिक्' शास्त्र के रहस्यों और 'तान्त्रिक' साधना से पूरी तरह परिचित थीं। यह बात स्वत: उनकी वाणी (वाखों) से स्पष्ट है। उनमें वह बार-बार 'प्राण अपान, नाद-बिंदु, कुंडलिनी, योग, कलाओं और ब्रह्मरंध्र आदि का उल्लेख करती हैं। उनकी दृष्टि में 'परमशिव' अकुल' है मगर 'शक्ति' जो 'कुल' अर्थात् तत्वों का विश्व है, शिव हा का दूसरा रूप या पक्ष है। माया मात्र एक भ्रान्त धारणा (उपाधि) नहीं' अपितु शक्ति है। सृष्टि सम्भूत सत्ता है और साधक के लिए क्रिया एवं संघर्ष

का साधन है अथवा अन्य शब्दों में कहें तो वह ब्रह्माण्ड है, जिसमें ब्रह्मा के अण्डे पाये जाते हैं किन्तु जो वास्तव में शिव-शक्ति तत्व का अन्य पक्ष है । अंग्रेजी में इस भाव को अधिक स्पष्ट रूप में यों प्रस्तुत किया जा सकता है—

Maya is a shakti, not an illusion and the creation is a becoming, the experience of the experiencer, an unfoldment an out-volution or varying the metaphor again, a derivative of Mula-Prakriti, the Matrix in which the "eggs of Brahn a (Brahmanda) are laid which in truth is herself the other aspect of shiva-shakti Tattva—"अर्धपल्लवित शंकर-रूप मुद्रा ।"

उनके जीवन-वृत पर दृष्टि-निक्षेप न करते हुए जो बात निश्चय से कही जा सकती है, वह यह है कि उन्होंने कश्मीर के जन-मन को मोह लिया, हिन्दु हो या मुसलमान, अमीर हो या ग़रीब, शिक्षित हो या अपढ़, सबपर उनकी वाणी का गहरा और चिरस्थायी प्रभाव पड़ा है। वह कश्मीर की अत्यन्त लोकप्रिय संत कवयित्री है। किन्तु उनकी लोकप्रियता का कारण दर्शन के गहन रहस्यों का उद्घाटन या प्राणायाम प्रक्रिया या कुण्डलिनी एवं 'नाद-बिंदु'-योग का चिन्तन-मनन नहीं । न ही इसलिए आदर-सम्मान के योग्य समझी जाती हैं कि उन्होंने शैव दर्शन का प्रतिनिधित्व किया प्रत्युत उनकी लोकप्रियता का कारण उनकी निष्ठा, साधनानुभव, सद्भाव, दूरदर्शिता और अध्यात्म सम्बन्धी रहस्यों का ज्ञान है, जिनको वे काव्यमय वर्णनशैली के साथ मुहावरेदार एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत करती हैं। उनकी भाषा की सर्वप्रियता का अनुमान यों लगाया जा सकता है कि उनके 'वाख' आज की बोलचाल में भी प्रचलित हैं । उनकी भाषा और आज की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं । उसका कारण यह है कि ये 'वाख' हम तक श्रुति परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आये हैं और उनकी भाषा बदलती रही है। हां, इनमें कुछ ऐसे शब्द अवश्य दीखते हैं जो अब या तो मर चुके हैं या पुराने हो कर अप्रयुक्त हुए हैं कुछ शब्द ऐसे हैं कि उन्होंने तुकों और छन्दोबद्धता के कारण लोकमानस में घर कर लिया है और आज तक निरन्तर प्रयुक्त किये जाते हैं। वाणी में जो आलंकारिक एवं लाक्षणिक विचित्रता और भावाभिव्यंजन में जो विशदता पाई जाती है, वह अनुपम है। इन्हीं विशेषताओं ने उनके काव्य को कश्मीर के श्रेष्ठ साहित्य में एक अमर और शाश्वत स्थान प्रदान किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) 'आमि पन सोद्रस नावि छस लमान...... ॥ 1 ॥
(मैं कच्चे धागे की सहायता से समुद्र में नाव खेती हों')

| |

(ख) नाबदि् बारस अटगण्डड योल गोम......3.

(पताशे के भार की रज्जु-ग्रन्थि ढीली पढ़ गई।)

|

(ग) ग्यान-मारग है हाक-वार......17

(ज्ञान-मार्ग एक शाक-वाटिका है)

| | | | |

(घ) लोलुकि नार वालिज बुज़्म......83

(मैंने प्रेमानल में अपना हिया जला दिया)

|

(ङ) **लल बो द्रायस कपसि पोशिचि सच़इ......115**

(मैं (लल) कपास के फूल की तरह विकसने की आशा में (दूर) जा निकली।)

ललद्यद का काव्य मस्ती व तन्मयता के भावों से आप्लावित है और उसमें वेदान्त और अध्यात्म-तत्व के रहस्यों का वह भण्डार पाया जाता है, जो सन्तों और सूफ़ियों की साधना व क्रिया के सुन्दर समन्वय पर आधारित है और जो उनकी पारस्परिक अनुकूलता एवं समग्रता का प्रतीक है।

वाखों का यह संग्रह तत्व-दृष्टि, भक्ति-भावना एवं सदाशयता का एक ऐसा दर्पण प्रस्तुत करता है, जिसमें यथार्थ की झलक स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है। उच्च-कोटि के संतों और सूफियों की वाणी में नि:संदेह यही गुण पाये जाते हैं। स्पष्ट है कि एक व्यक्ति एक साथ कई अवस्थाओं में रहता है, जिन्हें हम मोटे तौर पर दो अवस्थाओं में बांट सकते हैं—एक बाह्य-जगत, जिसमें चर-अचर और प्रकृति के वे सारे नियम आ जाते हैं, जो व्यक्ति के शरीर को प्रभावित करते हैं। दूसरा है अन्तर्जगत, जो व्यक्ति के विचारों एवं मनोभावों पर आधारित है और जिसकी रचना उसके ज्ञान, अनुभूति, अनुभव, भावना तथा उन सभी सम्बन्धों से होती है, जो वह अपने वातावरण, अन्य व्यक्तियों और समाज से जोड़ देता है। कई लोग ऐसे हो गुजरे हैं, जो इन सम्बन्धों की खोज करना चाहते हैं। जिस विश्व को हमने अपने सम्बन्धों से जोड़-तोड़ कर बनाया होता है, परन्तु वस्तुत: जिसका अस्तित्व नाम-रूपात्मक जगत से अधिक कुछ भी नहीं, वे उस (स्थिति) से गुजर कर यथार्थ को पाने के अभिलाषी होते हैं। इस जिज्ञासा में वे संसार के अनेक मूल्यों को त्याग देते हैं। हम इस सत्य को भूल जाते हैं कि कोई वस्तु और उसके नाम-रूप और विवरण में बहुत अन्तर है। किसी वस्तु का नाम या रूप और उसकी वास्तविकता समानार्थक

नहीं। उदाहरणत: भूख शब्द या उसकी कल्पना स्वत: भूख नहीं या अन्न का मात्र विचार अन्न नहीं। इस प्रकार परमात्मा शब्द या उसका विचार परमात्मा नहीं। अत: मात्र 'भगवान-भगवान' करने से उसकी यथार्थता पहचानी नहीं जाती। किसी वस्तु-स्थिति की जो भी हम कल्पना करते हैं, वह हमारे निजी विचारों की उपज है और उसी की एक द्विविधा—

ललद्यद का कथन है—

शिव-शिव करान शिव नो तोषे......
(शिव-शिव जपने से शिव संतुष्ट नहीं होता)

तत्वदर्शी विभूतियों का मत है कि सत्य खोज की वस्तु नहीं और नहीं यह कहने-सुनने की वस्तु है, यह मात्र दृष्टि-तत्व (अनुभवगम्य वस्तु) है। इस प्रसंग में ललद्यद का कहना है—

लल बो लूसस छ़ारान त गारान,
हल म्य कोरमस रस निशि त।
वुछुन ह्योतमस तारि़ डीठिमस बरन,
म्य ति कल गनेयि त जोगमस् तती ॥ 34 ॥
(मैं (लल) उसकी खोज करते-करते थक—हार गई। मैंने अपनी पूर्ण शक्ति लगाई, बल्कि उससे भी बढ़कर जतन किये, मैं उसे (उत्सुकता से) देखने लगी, मगर द्वार बन्द पाया। मेरी चाह और भी बढ़ गई और मैं उसकी ताक में वहीं जम के बैठी रही।)

अन्यत्र कहती हैं—

छ़ांडान लूसस पानि़ पानस,
छ़्यपिथ ग्यानस वोतुम ना कोंछ।
लय कर्मस त वाचस अल्-थानस...॥ 37 ॥
(मैं अपने आप को ढूंढ़ते ढूंढ़ते थक गई, मगर मेरी यह खोज रहस्यमय ज्ञान का

पार न पा सकी : (परन्तु) जब मैंने उसको अपना बना लिया तो मैं उस मधुशाला (अर्थात् तत्वदर्शन के आदि-स्रोत) में जा पहुंची।

ललद्यद के मन में विश्व-तत्व (यथार्थ-सत्ता) से तादात्म्य पाने की तीव्र लगन और अतीव जिज्ञासा पाई जाती है। कहती हैं—

आमि पन सोद्रस नावि छस लमान,

कति बोज़ि दय म्योन म्यति दियि तार।

आम्यन टाक्यन पोञ ज़न शमान,

ज़ुव छुम भ्रमान घर गछ़ हा ॥ 1 ॥

(मैं (गोया) कच्चे धागे की सहायता से नाव को सागर में खेती जाती हूं। काश, दई मेरी सुन ले और मुझे पार उतार दे। मेरी दशा उस कच्चे मृत्पात्र की सी है, जिसमें पानी पच कर बेकार हो जाता है। मेरी आत्मा अपने घर को लौटने के लिए लालयित है।)

उस अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने के साधन क्या हैं, इस विषय में वह यों प्रश्न करती है—

गछ़ कमि दिशि कव ज़ान वथ ॥ 10 ॥

(किस दिशा से जाऊं और (निर्दिष्ट) पथ कैसे पहचानूं ?)

अस्तु, यह रस-रंग का जगत, यह नाम-रूप की सृष्टि, जो हमारे ही मन में संसर्गों के आधार पर अतीत की स्मृति या भविष्य की अभिलाषा के रूप में खड़ी की है, और जिसने वास्तविकता पर कुछ ऐसा आवरण डाल रखा है, जो हटाये नहीं हटता, वह सृष्टि हमारी राह में बाधक है। आवरण हट जाय तो तत्व-दर्शन हो सकता है। या यों समझिये कि इस संसर्गजन्य जगत के स्रष्टा अर्थात् मन का आवरण उठ जाये तो मानव यथार्थ को पहचान सकता है। ललद्यद कहती हैं कि पूजा-पाठ करने, पुष्पार्घ्य चढ़ाने, पशुबलि देने या ऐसी ही कथित रीतियों एवं धार्मिक प्रथाओं के अनुकरण से सत्य-दर्शन नहीं हो सकते। वह इन धर्म-रीतियों को रेत की रस्सी मानती हैं और कहती हैं—

(क) कुश पोश तेल दीफ ना गछ़े ॥ 43 ॥
(कुशा, पुष्प, तिल, और धूप-दीप नहीं चाहिए)

(ख) अचीतन वटस सचीतन कठ छुन आहार ॥ 44 ॥
(अचेतन पाषाण को सचेतन भेड़ की बली देना।)

(ग) हा मनषि क्याजि छुख वुठान स्यकि लवर ॥ 16 ॥
(हे मनुष्य ! क्यों तू सिकता की रस्सी बट रहा है ?)

मानव इन सीमित साधनों से सत्य पा नहीं सकता, न उस (यथार्थ सत्ता को) चापलूसी से अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है, और न ही बैन-विनती करने से उस तक पहुंच सकता है। वह कहीं दूर नहीं, कहीं से बुला कर लाने की वस्तु नहीं, वह सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है और निकटतम शब्दमय है। ललद्यद कहती हैं—

(क) वुछुम पंडित पननि घरे ॥ 36 ॥
(मैंने पंडित को अपने ही घर में देखा।)

(ख) निशि छुय तय दूर मो गारून ॥ 73 ॥
(वह तेरे समीप है। उसे दूर न खोज।)

(ग) निशि छुय तय परज़ानतन्...
(वह तेरे निकट है, उसे पहचान ले।)

वास्तव (सत्य-तत्व) को पाने के लिए तपस्या या साधना आवश्यक नहीं, न यह मात्र कामना से मिल सकता है। उनके विचार से यदि कोई ध्यान में इस प्रकार समा जाय, जैसे सलिल में लवण, तो भी उसके लिए सत्य-प्रतिभिज्ञा दुस्साध्य है। कहती हैं—

सहज़स शम त दम नो गछ़े,
यछ़ि नो प्रावख म्वक्ति-द्वार।
सलिलस् लवण ज़न मीलिथ गछ़े,
तोति छुय दुर्लभ सहज़्-विचा़र ॥ 38 ॥

(सहज (आदिशक्ति) की प्रतिभिज्ञा के लिए शम और दम (इन्द्रिय-निग्रह और शांति-साधनों) की आवश्यकता नहीं। मात्र-कामना से मुक्ति-द्वार पाया नहीं जा

सकता। यदि साधक सलिल में लवण की तरह भी तन्मय हो तो भी सहज-विचार (तत्व-दृष्टि) दुर्लभ है)

हां, जिन विषयों से 'मन' अथवा 'अहम्' को पुष्टि मिलती है या दूसरे शब्दों में जो (विषय) मनुष्य को भ्रम में डालते हैं अर्थात् काम, क्रोध, लोभ और अहंकार—ये सब बटमार हैं और मनुष्य को दिन-दहाड़े लूटते हैं। इनसे अपने आपको बचाना हितकारी है। कहती हैं—

(क) **मारुख मार बुथि काम क्रूध त लूभ ॥ 71 ॥**
(काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों मारक हैं। उन्हें मार डाल)

(ख) **यमि् लूभ् मन्मथ मद-चू़र मोरुन,**
वत नाशि् मारिथ ति लोगुन दास।
तमी सहज़ ईश्वर गोरून, ॥ 70 ॥
(जिसने लोभ, मन्मथ और मद-रूपी चोर का हनन किया। (इन) बटमारों का नाश कर के जो दास (सेवाकारी) बना, उसी ने सहज ईश्वर की वास्तविक तलाश की।)

परन्तु यह साधना कुछ सरल नहीं। कहती हैं—

पढ़न स्वलब पालुन द्वर्लब
सहज़ गारुन सिखिम त कूठ ॥ 52 ॥
(पढ़ना सुलभ है, परन्तु पालन करना दुर्लभ है। आत्मान्वेषण सूक्षम और कठिन है।)

मानव कल्पना-जाल से छूटे और अपनी वास्तविकता में निमग्न हो जाय तो यह सबसे बड़ी पूजा है। इसपर ललद्यद ने कहा है—

(क) **लूभ मारुन सहज़ विचारुन,**

द्रोग ज़ानुन कल्पन त्राव ॥ 73 ॥

(लोभ को मार कर सहज (आत्म) विचार में तन्मय हो जा। उसे बहुमूल्य समझ। कल्पना त्याग दे।)

(ख) **ललिय़-ललिय़ करान लाल वुज़नोवुम ॥ 82 ॥**
(लली हूं,मैं लली हूं, यह आवाज़ देते-देते लि मैंने प्रियतम को जगा दिया)

(ग) **स्व-व्यचा़र पोल्‌ हरस पूजि़ लाग...।**
(अपने विचार-रूपी जल से शिव का अभिषेक करे।)

यही साधना है और यही तपस्या। इस तथ्य को जानने के लिए सहनशीलता एवं संतोष की आवश्यकता है, किसी द्वन्द्व या खींचातानी की नहीं—

(क) **म्य ति कल गनेयि त ज़ोगमस तती ॥ 34 ॥**
(मेरी जिज्ञासा बढ़ गई और उसकी ताक में वहीं बैठ गई।)

(ख) **त्यलि लल नाव द्राम यलि दलि्‌ त्राविमस्‌ ततिय ॥ 35 ॥**
(जब मैं आंचल फैलाये (ध्यान-निमग्न) वहीं बैठी रही, तो मैं 'लल' नाम से प्रसिद्ध हुई।)

(ग) **ह्यत मालि संतूष वालित पानै ॥ 28 ॥**
(हे मन, संतोष से काम ले, वह स्वत: मिल जायगा।)

इन बातों से यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक नहीं कि मनुष्य संसार से नाता तोड़कर दूर किसी वन-प्रदेश में जा बसे। देखिए, इस विषय में उनका क्या अभिमत है—

कन्द्यौ गेह तजि्‌, कन्द्यौ वनवास, व्यफोल मन न रटिथ ति वास।
द्यन-राथ गंज़रिथ पनुन श्वास, युथुय छुख त त्युथुय आस ॥ 77 ॥
(कइयों ने घर छोड़े, कइयों ने वनवास त्यागा। चंचल मन जब तक नियंत्रित न होगा, कोई शान्ति सम्भव नहीं। दिन-रात निज श्वास को गिनता रह अर्थात् प्राणायाम की साधना चलती रहे तो जिस भी स्थिति में हो, वही उचित है।)

ललद्यद बाह्य जगत या भौतिक विश्व को तुच्छ मानने के पक्ष में नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को चाहे-अनचाहे इस संसार के साथ थोड़ा-बहुत लगाव रखना पड़ता है, उस पर शीतोष्ण का प्रभाव होता है, उसे खाने-पीने की आवश्यकता पड़ती है और वह जीवन की अन्य आवश्यकताओं से असंपृक्त नहीं रह सकता। कहती हैं—

यव तूर चलि तिम अम्बर हयता, ख्योद यव गली तिम् आहार अन ॥60॥
(वे अम्बर (वस्त्र) पहन, जिनसे शीत भागे, वे अन्न खा, जिससे क्षुधा मिटे।)

वह यह भी कहती हैं कि कामनाओं की पूर्ति से मन को शान्ति नहीं मिलती—

ख्यथ-गंडिथ शम ना मानस ॥ 65 ॥
(खाने-पहनने से मन को शान्ति नहीं मिलती।)

उनका कहना है कि इच्छाओं को दबाने से भी यह शान्ति नहीं मिलती—

ख्यन-ख्यन करान कुन नो वातख, न ख्यन गछख अहंकारी ॥ 64 ॥
(बार-बार खाने से कुछ भी प्राप्त न होगा और ना खाने (उपवास) से (तू) अहंकारी हो जायेगा।)

एक व्यक्ति होने के नाते मनुष्य को अनिवार्यतः समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क बनाने पड़ते हैं। उनके साथ मिल-जुलकर रहना उचित है। जो कुछ बुरा-भला वे कहें, गाली दें, क्रोध करें या प्रशंसा व चापलूसी करें—अर्थात् जो कुछ वे कहें या करें, उससे प्रभावित नहीं होना चाहिए—

गाल गंडिन्यम् बोल पड़िन्यम,

दपिनम तिय यस यि रुच्‌।

सहज कसोमौ पूज करिनम,

वो अमलान्य् त कस क्या म्वच़् ॥ 55 ॥

(वे मुझे गाली दें या बदनाम करें, जो जिसे रुचे वही मेरे विषय में कह दे। सद्भाव-रूपी कुसुमों से कोई मेरी पूजा करे, मैं अमलिन हूं। भला किसी को क्या मिलेगा।)

ललद्यद का कहना है कि मनुष्य यदि सत्य को गले लगाकर मन को किसी अन्य वस्तु से न जोड़े तो दिन-रात सांसारिक व्यवहार में व्यस्त रहते हुए भी सर्वतः उसका उद्धार ही होगा—

शिव-शिव करान हम्स गथ स्वारिथ,

रुजि़थ व्यवहारि् द्यन किहो राथ।

लागि-रूस अद्वय मन युस करिथ,

तस न्यथ प्रसन् सुरगुरुनाथ ॥ 76 ॥

शिव-शिव करते हुए (जो) हंसगति का ध्यान रखे। व्यवहारी बनकर जो दिन-रात कार्यरत रहे। किंतु रागरहित मन को अद्वय रखे अर्थात् एकैश्वर्यवाद को ही माने, उसपर सुरगुरुनाथ (देवाधिदेव शिव) नित्य प्रसन्न रहते हैं।)

ललद्यद अपने वाखों में यत्र-तत्र मन की दुई (द्वित्व) को मिटाने का अनुरोध करती हैं—

पर त पान यमि् सोम मोन यमि् ह्यू मोन द्यन क्यो राथ।

यमिसुय मन अद्वय सॉपुय, तमिय ड्यूंठुय सुरगुरुनाथ ॥ 74 ॥

(जिसने पर और निज को सम माना, जिसने दिन और रात में भेद न जाना, जिसका मन अद्वय हुआ, उसीने देवाधिदेव (शिव) के दर्शन किये।)

सत्य को पाने का मार्ग यही है। जब मन का आवरण हट जाता है तो वह स्वतः प्रकट हो जाता हैं। ऐसी स्थिति में जो अनुभूति होती है वह अनिर्वचनीय

होती है। इस अनुभूति को ललद्यद अनुपम व्यंजनाओं एवं लक्षणाओं में व्यक्त करती हैं—

(क) अभ्यासी सविकासि लय वोथू,

गगनस सगुण स्यूल समच़टा।

शुन्य़ गोल तै अनामय मोतू,

योहै व्वपदीश छुय बटा ॥ 108 ॥

जब योग के अनवरत अभ्यास से विकासमान विश्व लय (अदृष्ट) हो जाता है। सगुण (सृष्टि) गगन (आकाश) में समाविष्ट होती है। फिर शून्य भी मिट जाता है और अनामय (रोगशोकरहित ब्रह्म तत्व) बचता है। हे ब्राह्मण, यही उपदेश है।)

(ख) वाख मनस क्वल अक्वल ना अते,

छ़्वपि मुदरि अति ना प्रवीश।

रोज़न शिव शक्ति न अते,

मोतुय केंह त सुय व्वपदीश ॥ 109 ॥

(वहां न (कहने को) वाणी रहती है, न (सोचने को) मन और न क्वल (शिव-दृष्टि की निर्दिष्ट 36 तत्वों की प्रक्रिया)। वहां शिव-शक्ति तत्व भी शेष नहीं रहते। जो कुछ बचा रहता है, वही उपदेश है।)

यही पराकाष्ठा है, परम-पदवी है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस बाह्य जगत की वास्तविकता, जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है, एक आप्त पुरुष-संत या सूफी की दृष्टि में क्या है। क्या इहलोक व परलोक, खुदा व शैतान, व्यवहार और परमार्थ व्यष्टि एवं समष्टि, व्यक्ति और संसार अथवा इसी प्रकार का अन्य द्वित्व बना रहता है या नहीं ?

ललद्यद का कहना है, "जब मेरा मन दर्पण की तरह स्वच्छ और निर्मल हुआ तो मैंने उसे पहचाना। जब मैंने उसे पास ही देखा तो जो कुछ भी था वही था और मैं कहीं न थी।"

मकुरस जन मल चोलुम मनस,

| | ||

अद म्य लबम ज़नस ज़ान ।।

|

सु यलि ड्यूंठुम निशि पानस,

| |

सोरुय त ब नो केंह ॥ 130 ॥

अन्यत्र वह अपना आशय इस प्रकार समझाती हैं—

| | | |

तूरि सलिल ख्वत ताय तूरे,

हिमि त्र्य गै ब्यन अब्यन विमर्षा ।

च़्यतनि रव बाति सब समै,

शिवमय च़राच़र जग पश्या ॥ 111 ॥

''जब कड़ाके की सर्दी पड़ती है तो सलिल जम कर यख बनता है या हिम का रूप धारण करता है। देखने को तो ये तीन विभिन्न पदार्थ हैं, किन्तु विमर्श किया जाये तो तीनों पदार्थ वस्तुतः एक हैं । इसी प्रकार जब यथार्थ और वास्तविकता का रवि चमकता है तो जीव सृष्टि और शिवमय तत्व एक बन जाते हैं और ये सब एक ही सत्य की अभिव्यक्ति है'' ।

इस तत्व की जानकारी पाकर वह फिर निर्भीकता से पूछती हैं कि जब तू ही तू है तो फिर यह खेल कैसा ?

गालिब भी कह गये हैं—

जबकि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद ।

फिर यह हंगामाए खुदा क्या है ?

| |

च़ु यै नारान, च़ु यै नारान, च़ु यै नारायण यिम कम विह्न । 131 ॥

यह ज्ञान ललद्यद की जीवनी पर न केवल हावी रहा, अपितु उसने उनमें एक महान् परिवर्तन भी लाया । इसकी सूचना उनकी अमरवाणी से मिल जाती है।

'मोज़जये फन को है खूने जिगर से नमूद—उनके 'वाख' खूने जिगर में रंगे हुए है और उनमें वे रहस्य पाये जाते हैं, जो किसी आप्त संत या सूफ़ी ही के यहां मिल सकते हैं। उनके मनसे दुई मिट गई थी और वह अपने-पराये में कोई भेदभाव न रखती थी। वह प्यार और शांति का आदिस्रोत थी—

'नाथ ! ना पान ना पर ज़ोनुम।' 75॥

उनके मनसे सभी कामनाए स्वत: मिट गई थीं। वह आहार-व्यवहार में समन्वयप्रिय थी और हर प्रकार से मध्यवर्ती मार्ग अपनाना उनका स्वभाव बन चुका था—

(क) सोमुय आहार स्यठाह ज़ोनुम,

लूभन भूगन बरस न प्रय। 63॥

मैंने समन्वित रूप (समभाव) से खान-पान पर्याप्त समझा और लोभों-भोगों के झांसे में न आई।

(ख) सोमुय ख्य मालि सोमुय आसख्,

सोमि ख्यन मुचर्नै बरन्यन तारी॥ 64॥

—समभाव से (अधिक-न-कम) आहार कर, सम्यक बनेगा। युक्ताहार से तेरे लिए बन्द द्वार खुल जायेंगे।

वे कहती हैं कि धर्म-ग्रंथों में मृत्यु की जो आकृति प्रस्तुत की गई है वह अति भयानक है —

शास्तर बूज़िथ छु यम-भय क्रूठ॥ 65॥

'शास्त्रों को पढ़-सुनकर यम-भय बहुत भयावना प्रतीत होता है।'

उनके मन से अब सब भय मिट चुका था, क्योंकि उसमें मिथ्या आशाएं शेष नहीं रही थीं। अब वह जीवित होते हुए भी मानों मर चुकी थी। कहती हैं —

(क) व्रान्थ यिमौ त्राव तिमै गयि खसिथ ॥ 65 ॥

—'जिन्होंने झूठी आशाएं त्याग दीं, वे हीं परम-पदवी पा गये।'

(ख) ज़िन्द मरस् त स्य करि क्याह् ॥ 121 ॥

—'मैं जीते जी ही मर गई हूं, मेरा क्या बिगाड़ेगी।'

(ग) मरि कुस तै मारन कस—

—कौन मरेगा और किसको मारेंगे।

उनके लिए जीवन और मृत्यु समान थे। कहती हैं—

'मर नेछ़ त लस्स नेछ ॥ 123 ॥

—'मरूँ तो ठीक और जीवित रहूं तो ठीक।'

अब वह भूत और भविष्यत् अर्थात् काल-बन्धन से मुक्त हुई थी। संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है—

'सबात एक तग़य्युर को है जमाने में'
(संसार में परिवर्तन ही शाश्वत है)

इसी में जीवन का रहस्य निहित है। जबतक मनुष्य का मन इच्छाओं और भावों से लिप्त है, वह भूत भविष्यत् के चक्र में आवृत रहता है और तत्व-लाभ नहीं कर सकता, क्योंकि यथार्थ-तत्व इन बन्धनों से असंपृक्त और काल-पाश से मुक्त है। जबतक तत्व-दृष्टि नहीं मिलती, मनुष्य काल के परिवर्तन में फँसा रहता है। इस अर्थगर्भित सच्चाई की ओर ललद्यद यों संकेत करती है—

(क) कलन काल जालि् योदवै च़्य गोल,
व्यंदिव गेह वा व्यंदिव वनवास ॥ 75 ॥

—जब तेरी इच्छाएं काल-परिवर्तन से मुक्त होंगी अर्थात् जब कामनाएँ समाप्त हो जाएंगी तो फिर तू गृह में रहे या वन में, एक ही बात है।'

(ख) च़्यथ नोवुय चन्द्रम नोवुय,

जलमय ड्यूंठुम नवम नोवुय ।

यन प्यठ ललि म्य तनमन नोवुय—

||

तन लल बो नवम नवय छ्यस ॥ 133 ॥

—चित्त नया, चन्द्र नया और यह जलमय (सृष्टि) भी हर क्षण नई ही नई है। जबसे मैं (लल) ने अपना तन-मन स्वच्छ बनाया, तब से मैं (लल) क्षण-क्षण नया ही नया जीवन पाती हूं।

ललद्यद अब सत्य से मिली हुई थी। उन्हें ईश्वर को किसी नाम-विशेष से स्मरण करने की आवश्यकता न थी। उसे किसी भी अभिधा से याद किया जा सकता था, चाहे वह शिव हो या विष्णु, ब्रह्मा हो या बुद्ध या कुछ और। वे कहती भी हैं—

शिव वा केशव वा जिन वा,

कमलजनाथ नाम दार्यन यूह् ॥ 46 ॥

—'शिव हो या केशव, जिन हो या बुद्ध या कमलज ब्रह्मा—कुछ भी उसका नाम लो।'

वे धर्म-बन्धनों से मुक्त हो चुकी थीं। उनकी दृष्टि में हिन्दु और मुसलमान में कोई भेद न था। सब में एक ही शिवदृष्टि दिख रही थी। उन्हें खान-पान की वस्तुओं में भी भक्ष्याभक्ष्य का अन्तर न था। अब वह उस पदवी पर पहुंच थीं, जहां पर वह जो भी काम करतीं वह पूजा थी, ईश्वराराधना (नमाज) थी। जो कुछ वह कहतीं, वही प्रभु का नाम था, और जिस वस्तु पर दृष्टिपात करतीं, उसमें मात्र शिव-दर्शन होते—

(क) यि यि करम कोरुम सु अर्चुन,

यि रसनि व्यचोरुम ती मन्तर ॥ 134 ॥

—'मैंने जो भी कर्म किया, वह अर्चना बनी, मेरी रसना से जो उच्चरित हुआ वह मन्त्र था।'

(ख) गगन च़ुय भूतल च़ुय, चुय छुख द्यन पवन त राथ।

अर्घ चन्दन पोश पोञ च़ुय च़य छुख सोरुय त लागिज़िय क्याह् ॥125॥

—तू ही गगन है तू ही भूतल। तू ही दिन, पवन और रात है।

अर्घ्य, चन्दन, पुष्प, जल तू ही है, तू ही सब कुछ है, मैं भेंट करूं तो क्या।'

(ग) शिव छुय थलि-थलि रोज़ान,

मो जान ह्योन्द त मुसलमान ॥ 105 ॥

—शिव स्थल—प्रत्येक स्थल पर रहता है (सर्वव्यापक है)। हिन्दु और मुसलमान में कोई भेद न कर।'

(घ) जनस अंदर केवल ज़ोनुम, अनस ख्यनस कुस छुम द्वेश ॥ 119 ॥

—उसके बिना मुझे कोई और नज़र न आया। खाने-पीने में क्या पथ्यापथ्य मानती!'

(ङ) पानस मंज़ यलि ड्यूंठुख स्य च़्य,

स्य च़्य त पानस द्युतुम छोह ॥ 132 ॥

—मैंने जब तुझे अपने आप ही में पाया तो उल्लसित होकर अपने आप को और तुझे खूब अटखेलियों में लगाया।'

सारांश यह कि ललद्यद की अमर वाणी तत्वदर्शन, प्रेम और सद्भाव एवं सदाशयता का एक ऐसा दर्पण प्रस्तुत करती है, जिसमें सत्य और तत्व की झलक स्पष्टत: मिलती है। उच्चकोटि के सूफियों और संतों के काव्य की विशेषता भी यही हैं। देखिये मौलाना रोम क्या कहते हैं—

दीदने दीद्ह फज़ायद इश्क़ रा, इश्क़ अंदर दिल फ़ज़ायद सिदक़् रा।
सिद्क़ बैदारिये हर हिस मीशवद, हिरसहा रा ज़ौक़् मूनिस मीशवद।
हर हिसत पैग़म्बरे हिसहा शवद, जुमलये हिसहा दरां जन्नत रवद।
हिस्सहा बा हिस तू गोयंद राज़, बे ज़बानो बे हकीक़त बे मजाज़॥

श्री उत्पलदेवजी 'शिवस्तोप्रावली' में कहते हैं—

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं,

युष्मदर्चन रसायनासवम् ।

सर्वभाव चषकेषु पूरिते,

चापिवन्नपि भवेयमुन्मद; ॥

—'काश, मैं तुझ से अपनी आस्था का वह जीवन-आसव विभिन्न इन्द्रिय मुखों से निरन्तर भरपूर पान कर के मदमस्त हो जाऊं, जिससे सर्वभाव चषक-पूर्ण हैं।'

ललद्यद के समकालीन इतिहासज्ञों-उदाहरणत: जोनराज, श्रीवर और योध भट्ट ने अपने इतिहासों में उनका कोई उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण सम्भवत: यह है कि जन-साधारण के लिए यह पहला अवसर था, जब दार्शनिक रहस्यों और तत्वों का वर्णन एवं उनकी कार्यान्विति के साधनों व क्रियाओं का विवरण उन्हें अपनी भाषा में सुलभ हुआ। यद्यपि इस प्रकार की विद्या समझने वालों की संख्या अब थोड़ी रह गई थी, तो भी कश्मीरी भाषा में यह वर्णनशैली संस्कृत की तुलना में (जिसको अब अपेक्षाकृत कम लोग समझ सकते थे) बहुत लोकप्रिय हुई। स्पष्ट है, संस्कृत के पंडितों ने इस रीति को पसन्द नहीं किया होगा और इसलिए उनकी वाणी को महत्व देना उचित नहीं समझा होगा। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि यत: ललद्यद कोई विदुषी पण्डिता न थी, प्रत्युत समाज की परम्परा के विपरीत एक अर्धनग्न मस्तानी जोगन का रूप धारण किये रहती थीं, अत: इन इतिहासकारों ने उन्हें उपेक्षणीय समझा हो या यह भी हो सकता है कि उस समय तक ललद्यद उतनी विख्यातनाम न हुई हों जितना वह दो सदियों के उपरान्त हुई, जब उनके 'वाखों' की चर्चा यत्र-तत्र होने लगी। अवान्तर काल के इतिहासकारों ने कश्मीर के इतिहासों में उनका उल्लेख अत्यन्त श्रद्धा और आदर के साथ किया है।

ख्वाजा आज़म द्यदमरी[1] 'वाक़याते कश्मीर' (1149 हिजरी) तदनुसार 1720 ई० की अपनी इतिहास-रचना में लिखते हैं:—

"आरिफ़ा कामिला लल मजज़ूबा...रा जज़्बये इलाही रूदादा व दिल

1—पृष्ठ 34, 35, प्रकाशक गुलाम मुहम्मद नूरमुहम्मद, श्रीनगर।

बिनकताअ व वानजवां निहादह् चन्दे ब सिरो खफ़ाय मी गुज़रानीद व कसे अज़ ख़्वैश व पैवन्द पै बहालते बातिनी आ मजज़ूबये दर्दमन्द न मे बुर्द ।"

पंडित बीरबल काचरू की कृति 'मजमूअये तवारीख़'[2] (1846 ई०) में उनका उल्लेख यों किया गया है—

"लल नाम अफ़ीफ़ये खुदापरस्त...साफ़ ज़मीरे अज़ फ़िर्कये हुनूद क़दीम व मन्सये शहूद गुजाश्ता बूद.. दर मौज़ये पांपोर सुकूनत नमूद ।"

पीर गुलाम हसन खोयहामी की प्रसिद्ध तारीख[3] 'तारीखे हसन'-तृतीय भाग में ललद्यद का उल्लेख इन शब्दों में पाया जाता है :—

"बीबी लल आरिफा कामिला सानी राबेअ बूद व दर शहूद सन हफ्तसद हिजरी ज़हूर नमूदे आरन्द कि अफ़ीफ़ा अज़ मौज़ये सेम्पोर दर खानये ब्रह्मने मुतवल्लुद शुद। दर सगरसिन अजब सोज़ो-गुदाज़े दाश्त । दर कस्बये पांपोर ब अक्दे शौहर दादंद...व अश्आरे दर्दनाक मे गुफ्त कि आंहा ब जबाने ईं अंद या ललवाक में गोयन्द...दर हलक़ाये हुनूद में गोयन्द कि वे अज़ मास्त । मुसलमानां दलील मे आरन्द कि अज़ मास्त । फिलहक़ीक़त वै अज़ खासाने खुदास्त रहमतुल्लाह अलैहिहा ।"

ललद्यद की वाणी चौदहवीं सदी की कश्मीरी भाषा का नमूना है, मगर यह कहना कठिन है कि इन छपे हुए वाखों की भाषा उसी भाषा का यथावत रूप है, क्योंकि उस काल की कोई प्रमाणित पांडुलिपि उपलब्ध नहीं । व्यक्तिगत रूप से कई महानुभावों ने उनके 'वाख' समय-समय पर संकलित किये । ऐसा लगता है कि सर्वप्रथम पंडित भास्करनाथ राज़दान ने 64 वाखों का संस्कृत में अनुवाद किया था, जो कश्मीर सरकार के अनुसंधान विभाग ने छापा था । प्रोफेसर बुह्लर ने 'ललवाख' की संस्कृत पांडुलिपियों के अन्वेषण से सम्बन्धित ज रिपोर्ट 1877 ई०में प्रकाशित की, उसमें ऐसी दो पांडुलिपियों का उल्लेख किया गया है । सर जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार उसमें से न केवल एक भी पूर्ण नहीं, प्रत्युत उनमें परस्पर-विरोध भी पाया जाता है । उन्होंने 1914 ई० में अपने एक मित्र महामहोपाध्याय पंडिम मुकुन्दराम शास्त्री से इच्छा प्रकट की कि 'लल-वाक्यानि' की एक अच्छी पांडुलिपि प्राप्त की जाये । पंडित

2—फोलिया 99 $\frac{1840}{1846}$ पांडुलिपि, रिसर्च विभाग, श्रीनगर,

3—फोलियो 250—रिसर्च विभाग, श्रीनगर

मुकुन्दराम को इसकी खोज करते हुए गुश ग्राम के एक वयोवृद्ध ब्रह्मण धर्मदास से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ, जिसने श्रुति-परंपरा से कुछ पुरखों तक पहुंचे हुए 'ललवाख' कंठस्थ कर लिये थे और धर्मपरायण महानुभावों का आशीर्वाद पाने के हेतु उन्हें सुनाकर मनोरंजन करता था। पं० मुकुन्दराम ने उन वाखों को लिपिबद्ध किया और कुछ वाखों का अर्थ संस्कृत और कुछ का हिन्दी में लिखकर सर जार्ज को प्रस्तुत किये। उन्होंने सन् 1921 ई० में 109 वाखों के इस संकलन को 'ललव-वयानि' नाम से अंग्रेज़ी में अनुवाद एवं व्याख्या के साथ प्रकाशित किया। सर जार्ज के मतानुसार ये प्रमाणित हैं। अपने इस मत के समर्थन में वे इस पुस्तक की भूमिका में युक्तियां भी प्रस्तुत करते हैं। भूमिका के अतिरिक्त इसमें डाक्टर बार्नेट का लिखा हुआ एक विस्तृत और बहुमूल्य निबंध भी सम्मिलित है, जिसमें योग-साधना का विवरण अंकित है। ग्रियर्सन महोदय ने ललद्यद की भाषा और उसके छन्द-अलंकारों के प्रयोग की भी एक अनुसूची दी है। इस पुस्तक के अतिरिक्त श्री जे० हिन्टन नोल्ज़ की कृति 'कश्मीरी मुहावरे और लोकोक्तियां' में भी कुछ 'ललवाख' मिलते हैं।

ग्रियर्सन महोदय की पुस्तक प्रकाशित होने के कुछ वर्ष पश्चात् सर रिचर्ड टेम्पिल ने अंग्रेज़ी में 'ललवाख' का पद्यमय अनुवाद प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने ललद्यद से परिचय कराने के बारे में एक सविस्तार प्रस्तावना लिखी है। इसके एक भी अध्याय में ललद्यद की मान्यताओं से सम्बन्धित मूल स्रोतों का उल्लेख है और दूसरे अध्याय में उनके दर्शन-साधना उपक्रम के साथ-साथ तसव्वुफ, बौद्ध धर्म, तांत्रिक मत और शैव मत की चर्चा भी की गई है, जिसमें उनके परस्पर प्रभावों का उल्लेख करने के उपरान्त यह दर्शाया गया है कि ललद्यद की वाणी में इस समन्वय का कहां तक प्रभाव पड़ा है।

स्वर्गीय पंडित आनन्द कौल बामज़ई ने खोज करके ऐसे 75 वाख संकलित किये, जो इन प्रकाशित संग्रहों में सम्मिलित नहीं और जिनको उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में अंग्रेज़ी अनुवाद सहित छपवाया। उनके अतिरिक्त पंडित सर्वानन्द चिरागी और उनके पश्चात् पंडित ए० के० वांचू ने 'विमेन वेलफेयर ट्रस्ट' के प्रकाशनों के क्रम में 'ललवाख' सानुवाद प्रकाशित कराये।

प्रस्तुत संकलन इन विभिन्न प्रकाशित संग्रहों से आवश्यतानुसार चयन करके तैयार किया गया है। कोई आश्चर्य नहीं कि इसमें भी कुछ ऐसे वाख सम्मिलित हों, जो वास्तव में ललद्यद की वाणी का भाग न हो कर उनसे जोड़ दिये गये हों।

उदाहरण :

दिलकिस बाग़स दूर कर ग़ासिल,
अद छ्यव फ़वलिय यंबर्जलि बाग़ ।
मरन पत मंगनय उमरि हुंद हासिल,
मौत छुय पत-पत तहसीलदार ।।5।।

इन वाखों के अन्तर्वर्ती प्रमाणों से ही प्रतीत होता है कि ये ललद्यद के समय की रचना नहीं हैं। जो भी हो, हमने सामान्यत: इन वाखों को उसी प्रकार उद्धृत किया है, जिस रूप में ये हमारी उद्धृत पुस्तकों में विद्यमान हैं। संभवत: यही एक राह है जिसमें मतभेद की बहुत कम गुंजायश है।

इस बात से संभवत: कोई इनकार नहीं कर सकता कि किसी विषय या पुस्तक के एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करके उसके आशय को यथावत उतारना सरल नहीं, विशेषत: जब विषय पद्यबद्ध हो और गहन रहस्यों से पूर्ण हो। वर्तमान रूप में योग की उपयुक्त शब्दावली के लिए उर्दू के पर्यायवाची शब्दों की कमी और इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयों के कारण यह कार्य और भी दुष्कर हो जाता है। इन बातों को दृष्टि में रखते हुए यह अनुवाद कहीं-कहीं अर्थ स्पष्ट न कर पाये तो कोई आश्चर्य नहीं। उर्दू अनुवाद में संक्षेप और छन्दोबद्धता का रंग बनाये रखने के लिए इसे अंशत: तुकान्त पद्यों में और कहीं-कहीं अतुकांत पद्य में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। इसमें विषयानुसार अर्थ को बनाये रखने की पाबंदी के कारण यह आशा रखना अनावश्यक ही नहीं, न्यायपूर्ण भी नहीं है कि अनुवाद में काव्य के सभी अनिवार्य अंग उचित रूप से समाविष्ट हों। आशा है, विद्या प्रेमी महानुभाव इसी दृष्टिकोण से इन पृष्ठों का अध्ययन करेंगे और केवल विषय के सारांश से लाभान्वित होने का यत्न करेंगे।

यहां यह बता देना प्रासंगिक लगता है कि हम दोनों[1] ने परस्पर सहयोग और सहकारिता से यह कार्य पूर्ण किया है और दोनों जन सामान्य के सम्मुख इसको प्रस्तुत करने में समान रूप से उत्तरदायी हैं। प्रोफेसर कौल ने कश्मीरी 'वाखों' का

1—(उर्दू अनुवाद में)

चयन करके उर्दू में शब्दानुवाद किया और भूमिका लिखी। प्रो० तालिब ने इस अनुवाद में यथावश्यक काट छांट करके इसे पद्यरूप दिया और अर्थ-स्पष्टीकरण के हेतु कहीं-कहीं टिप्पणी से 'वाखों' की व्याख्या की। प्रो० कौल ने अप्रयुक्त एवं पुराने शब्दों की एक अनुसूची भी तैयार की। इस प्रकार दोनों ने मिलकर एक-दूसरे के कार्य का अवलोकन करके संयुक्त यत्न द्वारा पुस्तक-निर्माण में भाग लिया।

अब तक ललद्यद की वाणी के जितने संग्रह छप चुके हैं, उनमें वाखों का क्रम किसी नियम के अनुसार नहीं पाया जाता। प्रस्तुत संकलन में योग-साधना के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखकर यह क्रम बदल दिया गया है।

जयलाल कौल
नंदलाल कौल 'तालिब'

1

आमि पन सदरस नावि छ्यस् लमान,

कति बोज़ि दय् म्योन म्य ति दियि तार ।

आम्यन् टाक्यन् पोञ् ज़न शमान,

ज़ुव् छुम भ्रमान घर गछ़् हा ॥

कच्चे धागे (की सहायता) से मैं सागर में नैया खींच रही हूं । काश ! दई (ईश्वर) मेरी सुने, मुझे भी पार लगा दे । मेरी दशा उन कच्चे मृन्पात्रों (मिट्टी के बर्तनों) की सी है, जिनमें सदैव पानी पचता रहता है । मेरा जी कर रहा है, अपने घर (स्वधाम) को चली जाऊं ।

2

आयस वते गयस न वते,

सुमन[1] स्वथि मंज़ लूस्तम् द्वह् ।

चन्दस् वुछुम त हार[2] न अथे,

नाव तारस् दिम क्या ब्वह् ॥

(मैं) सीधी राह (जनपथ) से आई, पर सीधी राह से लौट न पाई । अभी सेतु के बीच ही आ रही थी कि इतने में दिन ढल गया । जब जेब में हाथ

पाठभेद—1. स्वमन
2. हर-नाव

डाल कर टटोला तो उसमें एक कौड़ी भी न पाई। अब बताओ, पार-तरावा दूं तो क्या दूं !

(अर्थभेद) सीधी राह से आई, पर लौट न सकी उसी राह से। स्व-मन-रूपी बांध (सेतु) से जा ही रही थी कि दिन ढल गया। भीतर झांका तो हर (शिव) का नाम साथ न पाया। कहिये, तब पार-तरावा क्या दूं !

3

नाबदि् बारस अटगण्ड ड्योल गोम,

देह्-काण[3] होल गोम ह्यक कह्यो।

ग्वर सुन्द् वनुन रावन्-त्योल प्योम,

पाह्लि-रूस्त् ल्योल गोम हयक कहयो।

(मेरे कंधे पर के) पताशों (सांसारिक सुख-संपदाओं) की गठड़ी की रज्जु-गांठ ढीली पड़ गई। देह कमान के सदृश झुक गई। (अर्थभेद) दिन का काम काज ही सारा बिगड़ गया। यह भार वहन करूं तो कैसे ?

गुरू-वाणी की ऐसी कड़ी चोट लगी कि जो कुछ (प्रेय) था, सब खो गया। रेवड़ गड़रिये के बगैर रह गया। कैसे यह बोझ वहन करूं ?

4

हचिवि हारिंजि प्यचि्व कान् गोम,

अबख-छान् प्योम यथ् राजधाने।

मंजबाग बाजरस् कुल्फ़ रूस् वान् गोम,

तीर्थ-रूस पान् गोम कुस् मालि जाने॥

3. दानकार

काठ के धनुष को नरकुल का बाण मिला। इस राज-महल के (निर्माण के) लिए बढ़ई मिला तो वह निपट मूर्ख। भरे-बाजार में मेरी दुकान ताले के बिना रही। देह मेरी तीर्थ-विहीन रही। कौन मेरी यह बेबसी समझे !

5

ललिथ-ललिथ वदय् ब्व वाय,
चित्ता मुहुच्य् प्ययी माय।
रोज़ी नो पत लोह-लंगरच्य् छाय,
निज-स्वरूप क्याह् मोठुय हाय॥

हेलल ! धीरे-धीरे बैन-विलाप करती रहूंगी तेरी दशा पर। हे चित, तुझे मोह-माया ने अभिभूत किया है। लोह-लंगर (भौतिक वैभव) की छाया तक तेरा साथ न देगी। हा हन्त ! तू निज स्वरूप को ही क्यों भुला बैठा !

6

हा च़्यता, कवे छुइ लोगमुत परमस्,
कव गोय अपज़िस पज़्युक ब्रोंत।
दुशि-बोज़ वश कोरनख पर-धर्मस्,
यिन गछ़्न ज़्यन-मरनस् क्रोन्त॥

हे चित्त ! तू औरों पर क्यों आसक्त हुआ है ? क्यों झूठे में सच की भ्रांति हुई तुझे ? (तुम में) बुद्धि की कमी है, जिसने तुझे पर-धर्म के वश कर रखा है। (तभी तो) तू आवागमन और जन्म-मरण के जाल में उलझा हुआ है।

7

तल छुय ज़्युस तय प्यठ छुख् नच़ान,

वन् त मालि, मन क्यथ पचान छुय।

सोरुय स्वंब्रिथ यति् छुय म्वचान्,

वन् त मालि अन क्यथ रोचान छुय॥

तेरे नीचे गहरा गढ़ा है और (उसके) ऊपर तू नाचता है। भला बता, तेरा मन (इस स्थिति पर) विश्वास कैसे कर रहा है! सब कुछ बटोर कर यहीं छोड़ना पड़ता है। तो बता, तुझे (अन्न) कैसे रूचता है? अर्थात् सांसारिक वैभव की असारता जानकर भी तू इसके अधीन क्यों हो जाता है?

8

क्याह् कर पाँच्न दहन त काहन,

व्वक्षुन यथ ल्यजि यिम् करिथ् गै।

सारिय समहन यिथ[1] रजि लमहन

अद क्याज़ि राविहे काहन गाव॥

इन्द्रिय-समूह) को क्या पांच (तत्व) दस (इन्द्रिय) और ग्यारह (मनसहित करूं! (ये सब) मेरी हण्डिया खाली कर गये। यदि सब मिलकर रस्सी को एक ही लक्ष्य की ओर खींचते, तो फिर (ये) ग्यारहों इस गौ को खो नहीं बैठते, अर्थात् इन्द्रियों और मन की विक्षिप्त दशा आत्मा को कहीं का रहने नहीं देती। जैसे ग्यारह स्वामियां की धेनु अपनी-अपनी ओर खिचे जाने से कहीं की नहीं रहती।

9

दिलकिस बाग़स दूर कर गासि़ल,

अद द्यव फ़वलिय यंबज़र्वल बाग़।

पाठभेद—1. यथ

मरिथ मंगनय वुग्नि हुंद हासिल,

मौत छुय पत-पत तहसीलदार ॥

मन-रूपी उद्यान से सब खरपतवार (कूड़ा-कचरा) हटा दे, तब कहीं नर्गिस के सुमनों का उपवन पुष्पित होगा। मृत्यु के उपरान्त तुझ से उम्र भर की उपलब्धि की मांग होगी, मानो मौत तहसीलदार[1] की तरह तेरे पीछे पड़ी है।

10

आयस् कमि दीशि त कमि वते,

गछ़ कमि दिशि कव ज़ान वथ् ।

अन्ति दाय लगिमय तते,

छ़निस फ्वकस काँछ़[2] ति नो सथ् ॥

किस दिशा और किस राह से आई हूं, किस दिशा से जाना है—यह सब मैं कैसे जानूं। मुझे राह सूझे तो कैसे। अन्ततः यदि मुझे सत्परामर्श मिले तो कितना अच्छा हो! क्योंकि वही मेरे काम आने वाला है। मात्र श्वास पर कोई आस्था नहीं।

11

अछ़्यन आय त गछ़ुन गछ़े,

पकुन गछ़े द्यन क्यो राथ् ।

योराय आय त तूर्य गछ़ुन गछ़े,

कें ह न त कें ह न त कें ह न त क्याह् ॥

1—सामन्ती दौर में तहसीलदार जनता को आंतकित करने का पदाधिकारी समझा जाता था ॥ (सं०)

2—कांह

31

हमारा आगमन अविच्छिन्न रहा और निरन्तर हम आ कर जाते रहे। (आवागमन का) यह क्रम अहोरात्र चलता रहेगा। जिस जगह से (इस प्रकार) हम आते रहे, वहीं हमारा जाना बराबर बना रहेगा। इस (चक्र) में यदि कोई रहस्य निहित नहीं, तो यह सब कुछ निरर्थक है क्या?

12

यह॒ यि करम करि प्यत्रुन पानस्,
अर्जुन-बर्जन ब्ययिस वयुत।
अन्ति लागि रोस पुशिरून स्वात्मस्,
अद यूर्य गछि़ त तूर्य छुम ह्योत॥

जो भी कर्म मैं करूं, उसको पूर्ण करने का भार मुझे ही वहन करना है; किन्तु (उस) कर्मफल के अर्जन और बटवारे में औरों का भाग है। यदि अन्त में निस्पृह हो कर मैं कर्मफल स्वात्मार्पण करूं तो जहां कहीं भी मैं जाऊं, वहीं मेरे लिए हितकर होगा।

13

ग्वरस् पृछ़ाम सासि लटे,
यस् न केंह वनान् तस् क्याह नाव।
पृछ़ान-पृछ़ान थचिस त लूसुस,
केंह नस् निशि क्याह॒ ताम् द्राव॥

गुरु से हजार बार पूछा था कि जो अनिवर्चनीय है, उसका क्या नाम है। पूछते-पूछते मैं थक कर हार गई, अस्त हो गई। (यही समझा) कुछ है, जो इस सारे अनाम का मूल (आदि-स्रोत) है।

14

ग्वरन वोननम् कुनुय वच् न,

न्यबर दोपनय् अन्दुँय अच् ुन ।

सुय गौ ललि म्य वाख-त-वच् ुन,

तवै म्य ह् योतुम नंगै[1] नच् ुन ।।

गुरु ने मुझे एक ही वचन की दीक्षा दी कि बाहर से भीतर को जा—(अन्तर्मुख हो जा)। वही वाक्य था, वही वचन था जो मुझ-लल का पथदर्शक और प्रेरक बना। तभी से मैं मस्त दिगम्बर अवस्था में नाचने लगी।

(पाठभेद) तभी मैं 'नोंगुय' नामक पहाड़ी फूल की तरह (आत्मज्ञान से) विकसित हो झूमने-नाचने लगी।]

15

राजस बाज्रि् यम्यि् करतल त्याजि्,

स्वर्गस बाज्रि् छुय तफ़-ताय-दान ।

सहजस बाज्रि् यम्य् ग्वर-कथ् पाजि्,

पाप्-प्वण्य बाज्रि् छुय पननुय पान ।।

जो तलवार का धनी बना, वह राज्य का भागीदार बना। जिसने तप और दान अपनाए, वह स्वर्ग का अधिकारी बना। जो गुरु-वचनों का पालन करता रहा वह सहज-स्वरूप की पदवी पा गया अर्थात् वह आत्म-साक्षात्कार के चरम लक्ष्य तक पहुंचा। मनुष्य अपने पाप-पुण्य का भागीदार आप है।

16

हा मनषि ! क्याजि छुख वुठान स्यकि-लवर,

अमि, रटि[1] हा-मालि[2] पकिय न नाव ।

पाठभेद—1. 'नौगुय'

पाठ-भेद—1. रखि

2. हमालि

ल्यूखुय यि नारानि् कर्मनि ऋखि ।

ति मालि ह्यकिय न फ़िरिथ काँह् ।।

हे मनुष्य, रेत की रस्सियां क्यों बटता है। इस तरह, हे भारवाहक ! तेरी नाव आगे नहीं जा सकती या इस रेखा से, भलेमानस, तेरी नैया अग्रसर नहीं हो सकती ! तेरी कर्म-रेखा पर जो कुछ नारायण लिख गए, वह कोई बदल नहीं सकता ।

17

ग्यान-मार्ग छय हाक-वार,

दिज्यस् शम-दम क्रयि, पन्य् ।

लामाचक्र पोश्या प्रान्य् क्रयि-दार,

ख्यन-ख्यन म्वचिय वारुय छ्यन्य् ।।

ज्ञान-मार्ग शाक-वाटिका है, इसके चारों ओर शम, दम और सत्कर्म की बाड़ लगा। इस प्रकार तेरे पूर्व कर्मों का फल उस पशु-बलि की तरह चुक जायेगा, जो साग-पात खा कर देवी की भेंट चढ़ जाता है। निरन्तर साग खाते रहने से ही वाटिका खाली हो जाएगी।

18

ग़ाफिलो हक कदम तुल,

वुनि छय् सुल त छाण्डुन यार ।

पर कर पैदा पर्वाज तुल,

वुनि छय् सुल् त छांण्डुन यार ।

ऐ गाफ़िल मदमस्त भुलक्कड़, तेज़-तेज़ कदम बढ़ा, अभी सवेरा है। अपने मित्र की तलाश कर। पंख पैदा कर कि तुझे उड़ कर जाना है। अभी समय है, अपने मित्र को ढूंढ़ ले।

19

दमन् बस्ति दितो दम्,
तिथय यिथ दमन खार।
शस्तंरस स्वन् गछ़ी हासिल,
वुनि छय् सुल त छ़ाण्डुन यार॥

जिस प्रकार लुहार धौंकनी में हवा भर कर लोहे को (अपनी इच्छानुसार) आकार में ढाल लेता है, उसी तरह तू भी देह-रूपी धौंकनी में प्राणायाम की विधि को अपना ले। इस क्रिया से लोहा स्वर्ण में परिणत होगा। अभी समय है। अपने यार की तलाश कर!

20

दिहचि लरि दारि-बर त्रोपरिम,
प्रान-च़ूर रोटुम त ग्युतमस् दम्।
हृदयिचि कूठरि अन्दर गोण्डुम,
ओमकि चोबकु तुलमस् बम्॥

देह-रूपी मकान के द्वार-झरोखे मैंने बन्द कर दिये और प्राणरूपी चोर को पकड़ कर उसके भागने की राहें रोक लीं। फिर हृदय की कुटिया के भीतर उसको बांध कर रखा और ओम् के चाबुक से उसको खूब पीटा। (जिससे सहज-नाद गूंज उठा)।

21

च़्यत त्वरग वगि ह्यथ् रोटुम,

च़्यलिथ मिलविथ दशि-नाड़ि वाव ।

तवै शशिकल व्यगलिथ वछुम्,

शुन्यस् शून्याह् मीलिथ गव् ॥

चित-रूपी घोड़े को लगाम दे कर थाम लिया। यत्न-पूर्वक (प्राणाभ्यास) द्वारा दशनाड़ियों के श्वासोछ्वास को बांध लिया। तब कहीं शशिकला पिघली और (मेरे पार्थिव) शरीर में उतर आई, और शून्य में शून्य विलीन हो गया। अर्थात् स्वात्मा सहजरूप (परमात्मा) में मिल गई।

22

पवन् पूरिथ युस अनि वगि,

तस् ब्व ना स्पर्शि न ब्वछि त त्रेश् ।

ति यस करुन अन्ति तगि,

सम्सारस सुय् ज्ययि नेछ ॥

जो प्राणों को पूरक (भीतर खींचने के) द्वारा नियन्त्रित करे, उसको न भूख स्पर्श करेगी न प्यास। जो अन्त तक यह (प्राणायाम-विधि) कर सके, इस संसार में उसी (भगवान) का जीना सार्थक है।

23

च़्यत तुरग गगन भ्रम-वोन,

निमिष अकि छ्ँड़ि यूज़न लछ् ।

च़यतनि वगि ब्वद्धि रटिथ ज़ोन,[1]
प्रान-अपान संदारिथ् पखचि् ॥

चित-रूपी अश्व गगनचारी है। एक निमिष में लाखों योजन घूम आता है। जिसने बुद्धि और विवेक-रूपी लगाम से इसको थामना सीख लिया, वही प्राण-अपान के चक्रद्वय को नियन्त्रित करने में सफल होता है। (पाठभेद) जिसने लगाम से विचारों के घोड़े को थामा नहीं, उसके प्राणापान-रूपी चक्रद्वय टूट-फूट कर नष्ट हो गये।

24

ज़ानहा नाड़ि दल[2] रटिथ,
च़टिथ वटिथ कुटिथ क्लीश।
ज़ानहा अद अस्त रसायन गटिथ,
शिव छुय् कू़ठ त च़ेन व्वपदीश ॥

यदि मैं मन से नाडि-दल को नियन्त्रित करना जानती, यह जानती कि उन्हें कैसे काटूं और समेटूं, तो मुझे भी क्लेशों के निवारण की विधि आ जाती। और तब कहीं मुझ को रसायन घोटने (आत्म-ज्ञान) का अनुभव होता। शिव का पाना कठिन है, यह उपदेश ध्यानपूर्वक सुन ले।

25

शिशरस वुथ् कुस रटे,
कुस ब्वके रटे वाव।
युस पाँच़ इन्द्रिय च्यलिथ च़टे,
सुय रटे गटे रव ॥

पाठभेद : 1. यमि् न वगि यि रटिथ ज़ीन, प्राण-अपान फुटरावनस् पखचि्।

2. नाड़िदल मनं

शिशर में (छत से चूने वाली) टपकन को कौन रोक सकता है ? हवा को मुट्ठी में कौन पकड़ सकता है ? जो पंचेंन्द्रियों को समेट कर उन्हें कूट कर रखे, वही अन्धेरे में प्रकाशमय रवि को पा सकता है।

26

अकुय ओंकार युस् नाभि दरे,

कुम्भुइ ब्रह्माण्डस सुम गरे।

अख मुय मन्थंर च.यतस् करे,

तस् सास मन्थर क्याह् करे ॥

जो, एकाक्षर 'ओंकार' का जाप नाभि (मूलाधार) से आरम्भ कर के सुषुम्ना नाड़ी के अन्त (ब्रह्मरन्ध्र) तक कुम्भक द्वारा सेतुबद्ध कर धारणा करे और इसी एक मन्त्र (ओम्) को चित्तनिष्ठ कर दे, उसके लिए सहस्र मंत्रों का जाप निरर्थक है। अर्थात् एकाक्षर ओम् का जाप ही पर्याप्त है।

27

दमाह् दम् कोर्‌सस दमन हाले,

प्रजल्योम द़ीफ त ननेयम् ज़ाथ।

अद्रिम प्रकाश न्यबर छ़ोटुम।

गटि रोटुम त कर्मस थफ़् ॥

मैं क्षण-प्रतिक्षण कुम्भक द्वारा प्राण निरोध करती रही। इस (अभ्यास) से मेरे अन्तर में (ज्ञान) दीप प्रज्वलित हुआ और मैं यथार्थ सत्ता जान गई। मैंने अन्तर्प्रकाश बाहर प्रकट किया और तम में उस (सत्य) को दृढ़ता से ऐसे थामा कि जाने न पाया।

28

चालुन छु वुज़मल् त त्रटै,

चालुन छु मन्दिन्यन् गटकार् ।

चालुन छु पान पनुन कडुन् ग्रटै,

ह्यत मालि सन्तूश वाती पानै ।।

सहिष्णुता बिजली और अग्निपात है, सहिष्णुता मध्याह्न में अन्धकार का फैल जाना है। सहनशीलता अपने आपको चक्की में पीसना है। यदि तू संतोष करे तो वह (लक्ष्य) स्वयं मिल जायेगा।

29

ललन् हुन्द माज लार्योम वतन्,

अकिय हावनम अकिचिय वथ् ।

यिम-यिम बोजन् तिम कोन मतन्,

ललि बूज़ शतन् कुनिय कथ् ।।

मेरे तलवों का मांस सड़कों से चिमट गया अर्थात् सत्यान्वेषण में मुझे विविध कष्ट सहने पड़े। (अन्त में) एक ही ने एकत्व का मार्ग-दर्शन कराया। जो-जो यह (तत्व) सुनें, क्यों न वे भी मतवाले बन जाय! लल ने सौ बातों की एक बात सुन ली और गांठ बांध ली।

30

ट्योठ मोधुर तय म्यूठ ज़हर्,

यस यूत छ्ुनुख जतन-बाव ।

39

यमि् यथ् करुय कल्-त क़हर,

सु तथ् शहर वातिथ् प्यव् ॥

कड़वा मीठा है और मीठा विष अर्थात् कटु साधना परिणामतः मधुर है और मधुर व्यसन-व्यापार अन्ततः विषमय होता है। जो जितना जतन कर सके वह उतना फल पायेगा। तथा जिसने जिस (लक्ष्य को पाने) की एक-निष्ठा से अराधना की, वह उस उद्देश्य को पाने में सफल हुआ।

31

तन-मन गयस बो तस् कुनुइ,

बूज़ुम सतचि् घण्टा वज़ान् ।

तथ जायि धारणायि धारण रट़ुम,

आकाश्-त-प्रकाश कोरूम सर ॥

तन-मन से मैं उसके ध्यान में लीन रही। मैंने सत्य की घण्टी बजते सुनी। वहां (उस स्थिति में) मैंने धारणा को धारण किया, तब मुझे आकाश और प्रकाश का तत्व-ज्ञान हुआ।

32

कव छुख दिवान अनिने बछ़ ।

त्रुख् अय छुख् त अन्द्रय अछ़ ।

शिव छुय अति् तय कुन मो गछ़,

सहज़ कथि म्यानि करता पछ़ ॥

क्यों अन्धे की तरह इधर-उधर (निरर्थक) हाथ-पैर मार रहा है? यदि तू बुद्धिमान है तो अन्तर्मुख हो जा। शिव वहीं (भीतर) है, तुझे कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। मेरी सहज़-स्वाभाविक तत्वनिरुपक बातों पर भरोसा कर।

33

अथ म बा त्रावुन् खर् बा,
लुक हँज़ क्वंग-वार ख्ययिय् ।
तति कुस् बा दारी थर् बा,
यति ननिस करतल् प्ययिय् ॥

अपने हाथ से गधे (मन) को जाने न दे। यह लोगों की केसरवाटिका चर लेगा। वहाँ कौन तेरे बदले दण्ड भुगतेगा, जब तुम्हारे नंगे बदन पर तलवार की मार पड़ेगी। अर्थात् निरंकुश मन के कुकृत्यों का फल तुझे ही भोगना पड़ेगा।

34

'लल' बो लूसुस छांड़ान त ग्वारान,
हल् म्य कोरमस रस-निशि तिय ।
वुछुन् ह्योत्मस तारि डींठिमस् बरन्,
म्य ति कल् गनेयि ज़ोगमस् ततिय ॥

मैं लल ढूंढते-खोजते थक-हार गई। मैंने अपने बूते (सामर्थ्य) से बढ़कर भी ज़ोर लगाये। जब जिज्ञासा-पूर्वक उसकी ओर ताकने लगी तो देखा, उसके किवाड़ों पर कुण्डी लगी है। जिज्ञासा और भी बढ़ गई और मैं वहीं पर उसकी ताक में बैठी रही।

35

मल ब्वन्दि ज़ोलुम्,
जिगर मोरुम् ।
त्यलि लल् नाव द्राम्,
यलि दलि् त्राविमस ततिय् ॥

मैंने मन का सारा मल जला दिया। जिगर (इच्छाएँ) मार कर बैठी। जब मैं आंचल पसार कर (विनयपूर्वक) उनके द्वार पर जमकर बैठ गई, तब मेरा 'लल' नाम प्रसिद्ध हुआ-अर्थात् तब मेरी साध पूर्ण हुई।

लल ने जब मन को लोभ और मोह से मुक्त किया और वह विनयपूर्वक प्रतीक्षा करती रही तो उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये और वह ललेश्वरी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

36

लल बो द्रायस् लोल रे,

छाँड़ान लूस्तुम द्यन क्यो राथ।

वुछुम पँडिथ पननिय गरे,

सुय भ्य रट्मस न्यछतुर त साथ्॥

मैं 'लल' प्रीत की मतवाली सत्यान्वेषण को निकल पड़ी। ढूंढते-खोजते दिन ढला, रातें बीतीं। अन्ततः देखो तो पण्डित (इष्ट) मेरे अपने घर में ही था। वही शुभ मुहुर्त मैंने ग्रहण किया अर्थात् अन्तर्मुख हो कर कर ही मैं उससे तादात्म्य प्राप्त कर सकी।

37

छाँड़ान लूछ़स[1] पानी पानस्,

छ्यपिथ ग्यामस वोतुम ना कूंछ[2]।

लय् करमस त वाच़स अल्-थानस,

बरि् बरि् बान त च्यवान् न कूंह[3]॥

पाठभेद—1—लूस्̤स
2—कांह्
3—कांह्

मैं 'स्व' को ढूंढते-ढूंढते थक-हार गई । परन्तु इस प्रकार छिपे हुए ज्ञान (रहस्य) को भला कोई पा सकता है ? जब मैं 'स्व' में विलीन हो गई तब मैं 'अलथान' (ज्ञान-रूपी मधुशाला) में पहुंची, जहां मधु-चषक भरे पड़े हैं, पर कोई पीता नहीं ।

टिप्पणी : मानव यत्न-पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में अशक्त है। यह मात्र संतोष और देवानुग्रह से प्राप्त हो सकता है । जब 'लल' अपनी और शिवत्व के एकत्व से विज्ञ हुई तो वह अमृत-भवन में पहुंची । अमृत भवन का आशय है सोम, (चंद्र) जो शिवत्व का परिचायक है और 'सहस्रार' में स्थित है । योग-साधना द्वारा साधक अन्ततः सहस्रार में लय हो कर शिवमय हो जाता है । लल को खेद है कि बहुत कम लोग मुक्ति-साधन से लाभ लेते हैं । कहती हैं कि यह अमृत तो सुलभ है, पर इसको पीते बहुत कम हैं ।

38

सहजस शम् त दम् नो गछे,

यछि नो प्रावख् मुक्ति द्वार ।

सलिलस् लवण जन मीलिथ गछे,

तो ति छुय् दुर्लभ सहज़ व्यचार ॥

सहज (आत्म साक्षात्कार) के लिए शम एवं दम की आवश्यकता नहीं । मात्र चाहने से तू मुक्ति-द्वार नहीं पा सकता । (यदि) सलिल (जल) में लवण सदृश मेल भी हो, तो भी सहज विचार दुर्लभ है ।

टिप्पणी : आतम-प्रतीति मात्र कामना और इन्द्रिय-निग्रह से नहीं हो सकती ।

39

मूढ़ो क्रय छ्य न धारुन त पारुन,

मूढ़ो क्रय छ्य न रछिन्य् काय् ।

मूढ़ो क्रय छ्य न दीह सँदारुन,

सहज़ व्यचारुन छुय् व्यपदीश ॥

हे मूढ़ । व्रत-धारण और साज-सज्जा कर्तव्यकर्म नहीं । न ही मात्र काया की रक्षा कर्त्तव्य कर्म है। भोले मानव ! देह की सार-संभाल ही कर्त्तव्य कर्म नहीं । सहज-विचार (आत्मतत्व-चिन्तन) वास्तविक उपदेश है ।

40

चल चिता व्वन्दस् भयि मो बर्,
चोन चिन्थ करान् पान अनाद् ।
च्य को ज़ान्‌नि ल्योद हरि, कर,
कीवल तसुन्दुय तारुक नाद ॥

हे चंचल चित ! भय से आक्रान्त न हो । अनादि स्वयं तुम्हारी चिन्ता कर रहा है । तुझे क्या मालूम, तेरी क्षुधा (भूख) वह कब दूर कर दे । केवल उसी (शिव) का पल-छिन जाप करता रह ।

टिप्पणी : सांसारिक आवश्यकताओं के लिए दैववादी बनना चाहिए, वही सब कुछ देने वाला है । उसका आश्रय पाने के लिए रीति-पालन आवश्यक नहीं । जो बात महत्वपूर्ण है वह यह कि निरन्तर शिव का जाप पूर्ण आस्था से किया जाय, यही उस तक पहुंचने का साधन है और यही साध्य भी है ।

41

दीव बटा दीवर वटा,
प्यठ[1]-ब्वन छुय ईकवाठ् ।
पूज कस् करख हूट[2] बटा,
कर् मनस-त-पवनस् संगाठ ॥

देव भी पत्थर है और देवल (मंदिर) भी पत्थर । ऊपर नीचे सर्वत्र एक-सी पाषाणमय स्थिति है । हे पंडित, तू किसकी पूजा करेगा ? मन और पवन (प्राण)

पाठभेद : 1. हेरि 2. हूत

को एक साथ मिला दे—अर्थात् प्राणायाम की विधि से चित्तवृत्तियों का निरोध कर।

टिप्पणी : दिखावे की पूजा निरर्थक है।

42 (क)

कुस पुश् तय क्वस्स पुशाञी,
कम् कोसुम लागिज़्यस् पूज़े ।
कमि सर गोड़ दिज़्यस जलदानी,
कव सन मन्त्र शंकर स्वात्म वुज़े ।।

कौन माली है और मालिन कौन ? कौन से कुसुम उसकी पूजा के योग्य हैं ? किस जल से उसका अभिषेक करना है ? और कौन-सा मंत्र है वह, जिससे स्वातम-शंकर निज स्वरूप का साक्षात्कार करा दे।

42 (ख)

मन पुश तय यछ़ पुशाञी,
भावकि् कोसूम् लागिज़्यस् पूज़े ।
शशि.रस गोड़ दिज़्यस् जलदानी,
छ़्वपि मंत्र शंकर स्वात्म वुज़े ।।

मन माली है और जिज्ञासा मालिन। भाव-कुसुमों से उसकी पूजा करना। शशि-रस (सोम-सुधा) से उसका अभिषेक करना। मौन होकर मंत्र जाप करने से स्वात्म-शंकर उद्‌बुद्ध होगा।

टिप्पणी : यहां रीतिवादी पूजा के विरुद्ध अध्यात्म की श्रेष्ठता का वर्णन है। सोम वह रहस्यमय चंद्र है, जो 'सहस्रार' में स्थित है और रस (अमृत) वह, जो

साधक की आत्मा में व्यापक हो कर उसको 'स्व' का स्वामी बनने योग्य कर देता है। मंत्र वह मौन साधना है, जिसमें साधन निस्स्वन प्राणाभ्यास करता है।

43

कुश पोश् तेल दूफ जल ना गछे,
सद्भाव ग्वर कथ युस मनि ह्यये।
शम्भूहस स्वरि न्यति् पननि यछे,
साद प्यजे सहज अक्रिय न ज़्यये।।

(साधना के लिए) कुशा, पुष्प, तिल, दीप और जल की कोई आवश्यकता नहीं। सद्भाव से जो गुरु-वचन मन में धारणा करे और नित्य श्रद्धा से शम्भु का स्मरण करे, वह सहज-सनातन आनन्द में विलीन हो कर कर्म-बंधन से रहित हो मोक्ष प्राप्त करता है।

टिप्पणी : दिखावे का कार्य और इच्छाएं शिवमय बनने में रोड़ा बनती हैं और मनुष्य बार-बार जन्म लेता है। गुरु-शिक्षा के अनुसार आत्मा में शिव-प्रतीति पैदा होने पर मनुष्य कर्मचक्र से मुक्त होता है।

44

लज् कासी शीत न्यवारिय,
तृन् जल करान् आहार।
यि कमि् व्वपदीश कोरुय बटा,
अचीतन वट्स सचीतन ह्युन् आहार[1]।।

पादटिप्प : 1. इस वाख के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक कश्मीरी ब्राह्मण एक भेड़ को बलि के लिए ले जा रहा था। राह में उसे 'ललद्यद' मिलीं। उन्होंने स्थिति जान कर यह वाक्य कहा।

यह तेरी लज्जा को ढकने वाला है और शीत से तुम्हें बचाता है। तृण और जल इसका आहार है। हे मूर्ख पंडित, यह किसने कहा है कि अचेतन (निर्जीव) पत्थर को तू सचेतन (जीव) खाने को दे।

45

प्रथइ तीर्थन गछ़ान संन्यास,

ग्वारान स्वदर्शन म्यूल ।

च्यता परिथ मो निष्पथ आस्,

डेशख दूरे द्रमुन न्यूल् ॥

संन्यासी प्रत्येक तीर्थ को जाता है ताकि कहीं स्वात्म-दर्शन का लाभ हो। हे चित, पढ़-लिखकर भी निष्पथ (मार्गहीन) अविश्वासी न हो। दूर से देखने पर दूब हरी दिखती है। अर्थात् दूर के ढोल सुहावने होते हैं।

46

शिव वा कीशव वा जिन वा,

कमलजनाथ नामधारिन युह् ।

म्य अबलि कासि़तन भव-रुज,

सु वा सु वा सु वा सुह् ॥

शिव हो, केशव हो या जिन (महावीर स्वामी) हो अथवा कमलनाथ[1] (गौतम बुद्ध) हो। उसका जो कुछ भी नाम हो—मुझ अबला को भवरुज (संसार की व्याधियों) से मुक्त कर दे—चाहे वह कुछ भी कहलाये।

47

बुथि वयाह् जान छुख व्वन्द छूय् कनिय,

असलच् कथ् जांह सनिय नो।

1. ब्रह्मा

47

परान् लेखान वुठ ओंगज़्ि गजिय,

अँद्रिम दुई जांह च़जिय नो ॥

देखने में तू कितना सौम्य है, (परन्तु) दिल तेरा पत्थर (कठोर) है। सत्य की बात (मूल-तत्व) तुझे कभी समझ नहीं आई। पढ़ते-लिखते तेरे होठ और उंगलियां घिस गईं, (किन्तु) अन्तर की दुई (दुविधा) मिटी नहीं।

48

परान्-परान् ज़्यव् ताल् फजिम,

च़य युगि् क्रय तजिम न जांह।

सुमरन फिरान न्योठ त ओंगज़्ि गजिम,

मनचि् दुई मालि च़जिम न जाँह् ॥

पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ और तालु घिस गये ; मगर तेरे योग्य कर्त्तव्य-कर्म की विधि कभी मेरी समझ में न आई। सुमरनी (माला) फेरते हुए अंगूठा और अंगुलियां गल गईं, पर आह! मन की दुई फिर भी न मिटी।

49

दछिनिस ओब्रस जायुन जानहा,

सोद्रस् जानहा कडिथ अठ्।

मँदिस रूगियस वैद्युत् जानहा,

मूढस जानिम न प्रनिथ कथ् ॥

जल भरे मेघों (पुर्वैया) को छिन्न-भिन्न करना सुगम था, समुद्र से संपूर्ण जल

उलीचना संभव था, असाध्य रोगी की चिकित्सा भी कर सकती, (किन्तु) मूढ़ को बात (तत्वार्थ) समझा न सकी।

50

चर्मन च़टिथ दितिथ् पनि़ पानस्,
त्युथ क्याह् वव्योथ त फलिही सोव।
मूड्स व्वपदीश गय रींजि़ दुमटस्,
कनि़ दादंस गोर आपरिथ रोव॥

चर्म काट कर तू ने अपने चारों ओर खूंटे गाड़ उसकी बाड़ फैला दी है। ऐसा कौन-सा बीज बोया था, जो उग कर कुछ फल दे देता। मूर्ख को उपदेश करना गुंबज पर कंकर फेंकना है या भूरे बैल को गुड़ खिला कर उससे व्यर्थ ही दूध की आशा रखना है।

टिप्पणी : जिस प्रकार एक तुच्छ मोची मृत पशु से खाल उधेड़ कर आवश्यकतानुसार उसे चीर-फाड़ कर सुखाने को फैला देता है, उसी प्रकार सांसारिक मनुष्य शरीर-रूपी खाल को पालता है और उसको आहार-वैभव की दशा में इच्छाओं की कीलों से कस कर फैला देता है। इसके विपरीत बुद्धिमान कुशल कृषक की तरह अच्छे बीज बो कर सुफल पाता है।

51

अव्यस्तारी[1] पोथ्यन छि हो मालि परान,
यिथ तोत परान् 'राम' पंजरस्[2]॥
गीता परान् त हीथा लबान्,
परम् गीता त परान् छ्यस्॥

पाठभेद : 1. अव्यचारी 2. परि़-परि़ करान् ज़लद्धध मंदान, बड्योख तिमनुइ़ अहम्-भाव अर्थात् जैसे कोई नवनीत पाने के लिए जल को बिलोता जाए, उससे अहंभाव ही बढ़ता है और कुछ नहीं।

विचारहीन (मूर्ख) लोग धर्म-ग्रंथों को उसी प्रकार बांचते रहते हैं, जिस प्रकार पिंजरे में तोता राम-राम की रट लगाता है। (ऐसों के लिए) गीता-पाठ मात्र एक बहाना है। (दिखावा है) गीता मैंने पढ़ी और पढ़ती हूं—अर्थात् समझ कर अनुसरण करने का यत्न करती हूं।

52

पठुन स्वलभ पालुन द्वर्लभ,
सहज़ गारुन् सिखिम त क्रूठ।
अभ्यासकि गनिरै शास्त्र मोठुम्,
चीतन आनन्द निश्चय गोम्॥

पढ़ना सुलभ है, पर उसका पालन करना दुर्लभ है। सहजान्वेषण (स्वात्म की खोज) सूक्ष्म और कठिन है। अभ्यास के घनेरे (गुंजलक) में सब शास्त्र भूल बैठी। दृढ़-निष्ठा के बल पर फिर भी मुझे चेतन-आनन्द की प्राप्ति हुई।

53

पठन पोलुम अपोरुय पोरुम्,[1]
केसर-वन वोलुम रटिथ शाल्।
परस् प्रनुम त पानस पोलुम,
अद गोम मोलूम त ज़ीनिम हाल्॥

जो पढ़ा उसका पालन किया, जो पढ़ने में न आया था, वह पढ़ा। मैंने वन से सिंह को सियार की तरह पकड़ कर काबू किया। जो शिक्षा मैंने औरों को दी, उसका पहले स्वयं पालन किया। तब कहीं मुझे ज्ञान-प्राप्ति हुई और मैंने लक्ष्य साध लिया।

1: 'रोवुम'—खो दिया

54 (क)

मन्दछि हाँकल कर् छ्‌य्‌न्यम्,
यलि ह्‌यडुन-गेलुन-असुन प्राव ।
आरुक जाम कर्-सन दज़्यम्,
यलि अँदर्‌युम् खार्‌यक रोज़्यम् वार ॥

ब्रीडा (लाज) की साँकल कब टूट जायगी ? जब औरों के उलाहनों, छेड़ और हंसी-मखौल को सहन करूंगी। लज्जा का यह आवरण कब जल जायेगा ? जब अन्तर्मन का स्वछंद घोड़ा (चंचल मन) सध कर नियंत्रित रहेगा।

54 (ख)

रुत् त्‌ क्रुत सोरुय पज़्यम्,
क़नन् न बोज़ुन् अछ्‌यन न बाव ।
ओरुक दपुन यलि व्वन्दि वुज़्यम्,
रत्न-दीप प्रज़लयम् वर्जनि-वाव ।।

बुरा-भला सब मुझे सहन करना चाहिए। न मेरे कान (बुरा) सुन पायें, न मेरी आंखों में (दुर्भाव) दीखे। जब मेरे अन्तर्मन से उधर का आह्‌वान (स्वात्म-आह्‌वान) उद्‌बुद्ध हो, तब अकिंचनता के अंधड़ में भी रत्नदीप (अन्तर्प्रकाश) प्रज्वलित होगा।

55

गाल गण्डिन्यम्[1] बोल पड़िन्यम्,[2]
दपिन्यम्[3] तीं यस् यि रोचे ।

पाठभेद : 1. गण्डिनम्
2. परिनम्, 3. दपिनम

सहज कुसमौ पूज् करिन्यम्,[4]

बो अम्लान्य् त कस् क्याह् म्वचे ॥

कोई मुझे गाली दे या बुरा-भला कहे । जो जिसको रुचे, वही मुझे कहा करे । कोई सहज (सद्भाव) कुसमों से मेरी पूजा करे, मुझपर कोई मैल (प्रभाव) नहीं चढ़ेगा, क्योंकि मैं अमलिन हूं । ऐसी स्थिति में किसी को क्या मिलता है ?

56

ल्यक त थ्वक प्यठ् शेरि ह्याचम्,

न्यन्दा सपनिम पथ्-ब्रोंठ् तानि् ।

'लल' छ्यस् कल् जाँह नो छ्यनिम,

अद यलि सपनिस ब्यपिहे क्याह ॥

मैंने गाली-गलौज और थूक-फिटकार शिरोधार्य कर ली । अतीत से अब तक मेरी निन्दा होती रही । मैं 'लल' हूं और मेरी निष्ठा और एकाग्रता में कभी व्यवधान न पड़ा । और जब उपलब्धि का घंट पूर्ण हुआ तो उसमें अन्य कुछ समाता कैसे ?

57

आसा बोल् पडिन्यम् सासा[5]

म्य मनि वासा खीद ना हिये ।

ब्व योद सहज शंकर भखॅच् आसा,

मुकरिस सासा मल् क्याह प्यये ॥

4. करिनम्
5. परिनम्

कोई मुझे हजार गालियां क्यों न दे, मेरे मन में इसका तनिक भी खे[illegible]ीं है। यदि मैं सहज (स्वात्म) शंकर की भक्त हूं तो फिर बताइये, दर्पण पर राख डालने से मैल कहां जमेगी ?

58

मूढ़ ज़ानिथ पशिथ ति कोर,

कोल श्रुतवोन ज़ड़ रुफ आस् ।

युस् यि दपी तस् ती बोल,

योहय तत्व-व्यदिस छु अभ्यास् ।।

जानते हुए भी मूढ़ (भोला) बन, देखते हुए चक्षुहीन । सुनते हुए गूंगा, जड़ रूप धारण कर । जो कोई तुमसे जो कुछ कहे, उसको वही बात कह दे । तत्वविद् (तत्व ज्ञानी) का यही अभ्यास है ।

टिप्पणी : इस प्रसंग में संत कबीर का यह दोहा उल्लेखनीय है—

सबसे हिलिये सबसे मिलिये सबका लीजिये नाम ।

हां जी, हां जी, सबसे कहिए, बसिये अपने गाम ।।

59

कन्द्यो ! करख़ वन्दि कन्दे,

कन्द्यो ! करख़ कन्दि विलास ।

भूगय मीठ़ि दितिथ् यथ् कन्दे,

अथ् कन्दि रोज़ि सूर न त सास ।।

स्वमन गारुन मंज़ यथ कन्दे,

यथ कन्दि दपान स्वरूप नाव ।

लूभ-मूह चलिय शूब यियी कन्दें,

यथि कन्दि तीज़ तय सोर प्रकाश ।।

हे शरीरधारी मानव। यदि तू सदैव तन-बदन की ही चिन्ता-चर्चा करता रहे... तन की ही साज-सज्जा में रत रहेगा और भोगैश्वर से यदि तू इस तन को चमता रहेगा तो ऐसा समय आयेगा, जब इसकी राख तक शेष न रहेगी। (तुम्हें चाहिए कि) इस तन में सच्चे मन से उसकी खोज कर, जिसके कारण इस शरीर को सुरुप (रूपवान) कहा जाता है। लोभ-मोह जब मिट जायेगा तो यही तन सुशोभित होगा और तेज एवं सूर्य-प्रकाश से भासमान होगा।

60

यव तूर च़लि तिम् अम्बर हय्‌ता,
ख्योद यव गलि तिम् आहार अन्।
चि़त्ता स्व-पर व्यच़ारस प्यता,
च़ेन्‌तन यि दीह वन-कावन्॥

वह वस्त्र धारण कर ले, जिनसे ठंड दूर होगी। जिससे क्षुधा मिट जाये, वह आहार कर। हे चित्त! स्व (स्वात्म) और पर (परमात्म) का विचार कर। चिन्तन कर ले, यह देह अन्ततः वन्य-कागों का आहार (नश्वर) है।

61

नफ़सुय म्योन छुय होस्तुय,
अमि् हस्ति् मोंगनम् गरि-गरि बल्।
लछि मंज़ सास मन्ज़ अखा लोस्तुय,
न त ह्‌यतिनम् सारिय नल॥

मेरा यह लोभी मन (पेट) हाथी है। इस हाथी ने हर घड़ी बल मांगा है। इसकी चंगुल से हजारों-लाखों में से एकाध ही बचा हो तो हो, अन्यथा इसने सबको पद्‌दलित कर दिया है।

62

त्रेशि ब्वछि मो क्रेशिनावुन,

याज़ि छ्ययि ताञ संदारुन दिह ।

व्रत चोन धारुन त पारुन,

कर् व्वपकारुन स्वय छै क्रय ।।

भूख-प्यास से इस (देह) को तड़पाना नहीं । ज्यों ही (भूख-प्यास के मारे यह) बुझने लगे, तभी इसको संभालना । तेरे व्रतोपवास और साज़-सिंगार पर फिटकार है । उपकार कर, वही तेरा कर्तव्य-कर्म है ।

63

ज़नम प्राविथ व्यभव ना छोंडुम्,

लूभन-भूगन भेरुम न प्रय् ।

सोमुय आहार स्यठाह् ज़ोनुम,

चोलुम द्वख-वाव् पोलुम दय् ।।

ज़न्म पा कर मैंने विभव (ऐश्वर्य) की चाह नहीं की । लोभ और भोगैश्वर्य को प्रिय नहीं माना । युक्ताहार को ही पर्याप्त माना । इससे मेरा दुख-दैन्य दूर हुआ और मैंने दई (देव) की पूजा की ।

64

स्यन स्यन करान् कुन नो वातख,

न स्यन गछख् अहंकारी ।

सोमुय ख्य मालि सोमुय आसख,

समि स्यन मुचरनै बरन्यन् तारी ।।

खान-पान के अतिरेक से किसी उद्देश्य को नहीं पायेगा और निराहार (व्रतोपवासी) बनकर अहंकारी बन जायगा। खाना युक्त हो, (न कम न अधिक), उसी से समरसता रहेगी। और युक्ताहार-विहार (समरसता) से ही बन्द द्वार खुल जायेंगे।

65

ख्यथ् गंड़िथ श्यमि ना मानस्,
ब्रान्थ थिमौ त्राव तिमैं गय खसिथ।
शास्त्र बूज़िथ छु यम-भय क्रूर,
सु ना पोज़् त दनी लसिथ॥

खाने-पहनने से ही मन को शान्ति प्राप्त नहीं होती। जिन्होंने झूठी आशा को त्याग दिया, वे ही उन्नति-शिखर पर पहुंचे। शास्त्र पढ़-सुन कर मनुष्य को यम-भय अतिक्रूर दिखने लगता है। जिस धनी (भाग्यवान्) को ऋण न मिला अर्थात् जिसने झूठी आशाओं का सहारा नहीं लिया, वही आनन्द का भागीदार बना।

टिप्पणी : लालसा को यहां ऐसे धनी की उपमा दी गई है, जो लूटने के हेतु ऋण देता है और मूल धन व ब्याज की वापस पर कड़ा रुख धारण करता है। वह संतोषी निस्सदेह शुभ और पवित्र है, जिसकी लालसा ऋण नहीं देती।

66

ह्यथ् करिथ राज फ़ेरिना,
दिथ् करिथ तृप्ति ना मन।
लूभ-व्यना जीव मरिना,
जीवन्त मरि तय सुय् छुय ग्यान॥

राज्य पा कर और उसका उपभोग करके भी मन संतुष्ट नहीं होता। राज्य त्याग

कर भी मन की तृप्ति नहीं होती। लोभ-हीन होकर जीव (मानव) मरता नहीं। यदि कोई जीते जी ही मर जाय तो वही (तत्व) ज्ञान है।

67 (क)

कुस मरि तय कस़् मारन,
मरि कुस तय मारन् कस्।
युस् हर-हर त्राविथ घर-घर करे,
अद सु मरि तय मारन् तस् ॥

कौन मरे और किस को मारें, यह तो बता? जो हर-हर (शिवनाम का जाप) तज कर घर के कार्यों (भौतिक, सुख-वैभव) में ही उलझा रहे, वही मरेगा और उसी को मारेंगे भी।

67 (ख)

ग्वर-शब्दस युस् यछ़्-पछ़् बरे,
ग्यान वगि रटि च़यत त्वर्गस्।
यन्द्र्यै शोमरिथ आनन्द करे,
अद कुस मरि तय मारन् कस् ॥

गुरू शब्द पर जो प्रीतिपूर्वक आस्था रखे, ज्ञान की वल्गा (लगाम) द्वारा चित्त-अश्व (मनके चंचल घोड़ों) को वश में रखे। जो इन्द्रिय-शमन कर सके। उसी को आनन्द-प्राप्ति होगी। ऐसी स्थिति में कौन मरे और किस को मारे? अर्थात् ऐसी आत्मा मरण-भय से रहित होगी।

68

शील त मान् छुय पोञ् ऋंजे,
म्वछि यमि़ रोट मलि् योद वाव्।

होस्त् युस मस्त वाल गण्डे,

ति यस् तगि तय सु अद निहाल ॥

ख्याति एवं मान छलनी में जल समेटने-जैसी प्रक्रिया है अर्थात् व्यर्थ यत्न है। हाँ, पवन को मुट्ठी में बांध लेने जैसी पहलवानी जो कर सके, जो हाथी को केश-सूत्र से बांध सके, ये सब जिससे संभव हों—वह अवश्य निहाल (आत्मज्ञान से समृद्ध) हो जाएगा।

69

जल् थमवुन हुतवह् तुरनावुन्,[1]

ऊर्ध्वगमन पूरेव चर्य्‌थ ।

काठ्-धेनि द्वद् श्रमावुन्,

अन्तिह् सकलुय कपट्-चर्य्‌थ ॥

बहता हुआ (नदी या वर्षा का) जल रोकना, अग्नि-ज्वाला का शमन, पैरों द्वारा ऊर्ध्वगमन (भूमि से ऊपर उठकर आकाश-मार्ग की ओर वायु में चलना) काठ की धेनु (गाय) से दूध प्राप्त करना—ये सब अन्ततः कपट-चरित हैं। यहां पर योग-सिद्धियों का घटियापन व्यक्त किया गया है।

70

यमि लूभ मन्मथ् मद चूर मोरुन,

वत-नाशि मारिथ ति लोगुन दास

तमिय सहज ईश्वर गोरुन,

तमिय सोरुय व्यंदुन स्वास् ॥

पाठभेद : 1—शमनावुन

जिसने लोभ, मन्मथ (काम) और मद (अहंकार)-रूपी चोर मारे और इन बटमारों को मार कर जो दास (जन-सेवक) बना, वही सहज इश्वर का जिज्ञासु है और उसी की दृष्टि में यह सब राख (निस्सार) है।

टिप्पणी : सच्चा साधु या सन्त वही है, जो विनय और प्रीति अपना कर सबकी सेवा करे !

71

मारुख मारभूत काम-क्रूद्ध-लूभ,
न त कान बरिथ मारिनय पान् ।
मनै ख्यन् दिख् स्वव्यच़ार शम,
विषय तिहुंद क्याह्, क्युथ दोर ज़ान् ॥

काम, क्रोध, लोभ घातक हैं—इनको मार कर समाप्त कर दे, अन्यथा ये तुमको अपने तीरों (आकर्षणों) का लक्ष्य बनायेंगे। जान-बूझ कर इनको सुविचारों के खाद्य-द्वारा शान्त स्थिति में ले आ। यह दृढ़ता से जान ले कि इनके विषय क्या व कैसे हैं !

72

रंगस् मंज छु य ब्योन्-ब्योन् लबुन,
सोरुय च़ालख बरख् स्वख् ।
च़ख ह्यश त वैर गालख,
अद डेंशख शिव सुंद म्वख् ॥

विश्व-रंगस्थल में उसके (ईश्वर के) विविध नाम-रूप हैं। इस विविधता में ही उसे पाना बड़ी बात है। सब कुछ यदि सह लेगा तो सुख पायेगा। क्रोध, घृणा और वैर समाप्त कर दे, तभी शिव का मुख देख पायेगा।

73

लूभ् मारुन सहज प्यचारुन,

द्रोग जानुन कल्पन् त्राव ।

निशि छुय तय दूर मो गारुन,

शून्यस् शून्या मीलिथ् गौ ॥

लोभ तज दे, सहज (स्वात्मानुभूति) का विचार कर। उसका पाना बहुत महंगा पड़ता है, कल्पना-मात्र छोड़ दे। वह तेरे निकट है, दूर जाकर ढूंढने की आवश्यकता नहीं। देख, शून्य के साथ शून्य मिल गया। अर्थात् बाह्य और अन्तर्जगत का एकीकरण हुआ।

74

पर् ताय पान् यमि सोम मोन्,

यमि ह्यु मोन द्यन्-क्यो-राथ् ।

यमिसुइ अद्वय मन् साँपुनन्,

तमी ड्यूँठुय सुर-गुरुनाथ ॥

जिसने अपने-पराये को समान माना; जिसने दिन और रात में समदृष्टि अपनाई, जिसका मन अद्वय (द्विधारहित) हुआ, उसी ने सुरगुरुनाथ (परम् शिव) के दर्शन किये।

टिप्पणी : यहां दिन का अर्थ प्रसन्नता और रात का आशय दुःख है।

75

नाथ् । ना पान ना पर्ज़ोनुम्,

सदाइ बूदुम यि क्व दिह् ।

च़ बो बो च़ म्युल नो ज़ोनुम,

च़ कुस ब्व क्वस्स छु संदिह् ।।

हे स्वामी, न मैंने अपने आप को पहचाना, न पराये को। सदा इस शरीर को दुख देती रही 'तू मैं है', 'मैं तू हूं,—मेल का यह रहस्य मैं समझ न पाई। इसी संदेह में रही कि तुम कौन हो और मैं कौन हूं।

टिप्पणी : लल कहती है कि उसने साधना द्वारा मुक्ति पाने की कोशिश में शरीर को बहुत यातना दी, जिसकी वस्तुतः आवश्यकता न थी। आवश्यक था, 'पर' और 'स्व' की वास्तविकता को जानने की—मुक्ति पाने का मात्र साधन 'स्व' को शिव में लय करने की प्रतिभिज्ञा है। यह कहना कि 'मैं कौन हूं' और वह कौन है,' उस परमज्ञान पर संदेह करना है।

76

शिव शिव करान् हम्स गथ् स्वरिथ,

रुज़िथ व्यवहार्य् द्यन्-क्यों-राथ।

लागि रुस्त् अद्वय युस् मन करिथ,

तसि् न्यथ् प्रसन सुरगुरुनाथ ।।

शिव-नाम जपते हुए, हंस-गति (सोऽहम्) का ध्यान धारण कर, जो दिन-रात व्यवहारी (सांसारिक कार्यरत) रहे और अपने मन को निस्पृह और द्वित्व भावहीन बनाये, उसी पर सुरगुरुनाथ (परम शिव) नित्य प्रसन्न रहते हैं।

टिप्पणी : हंस-गति प्रसिद्ध संस्कृत सूत्र 'सोऽहम्' का रहस्यमय नामांतर है। 'सः अहम्' का विपर्यय 'हंसः' बन जाता है। 'हंसः' प्रायः शिव से जोड़ा जाता है, जो 'सहस्रार' में स्थिति है और आत्मा से भिन्न नहीं। द्विविधाहीन मन आत्मा और शिव में कोई भेद नहीं मानता।

77

कन्द्यौ गेह् तजि कन्द्यौ वनवास्,

व्यफोल मन ना रटिथ त वास ।

द्यन-राथ गँजरिथ पनुन श्वास,

युथुय छुख् त त्युथुय् आस् ॥

कइयों ने गृह त्याग दिये, कई वनवास करने लगे। चंचल मन अगर नियन्त्रित न हुआ तो सब विफल है, कहीं भी सुख नहीं मिलेगा। रात-दिन श्वासोच्छ्वास का हिसाब रख अर्थात् सांस के हर उतार-चढ़ाव में उसका ध्यान धर, फिर जिस भी स्थिति में तू है, वैसे ही रह। स्थान परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं।

78

कलन् काल ज़ाल्य् योदवै च़्य गोल,

व्यन्दिव गेह् वा व्यन्दिव वनवास ।

ज़ानिथ सर्वगथ प्रभु अमोल,

युथुय ज़ान्यख् त्यथुय आस ॥

यदि काल के जाल (समय-चक्र) के साथ-साथ तेरी कलना (इच्छाएं) मिट जायें, फिर तुम गृहस्थी रहो चाहे वनवासी बन जाओ। यह जान कि प्रभु सर्वगत और निर्मल है, तू जैसे उसको समझेगा, वैसी ही तेरी प्राप्ति होगी।

79

च़्यदानन्दस ग्यान प्रकाशस्,

यिमौ च़्यून् तिम ज़ीवन्त्य म्वख्त ।

व्यषमस् समसारनिस पाश्यस,

अबोद्य् गंडाह् श्यथ-श्यति् दिति् ॥

जिनको चित्त का आनन्द और ज्ञान के प्रकाश की उपलब्धि हुई, वे ही जीवन-मुक्त हैं। संसार के इस विषम पाश को मूर्ख लोग सौ-सौ गांठ दे-दे कर उलझाते रहते हैं।

टिप्पणी : चित्त, मनन-शक्ति, मनःज्ञान, तत्वबोध, परम शिव, उस परम शिव के दो पक्ष हैं—शिव-तत्व और शक्ति-तत्व। शिव-तत्व का अर्थ है पवित्र जीवात्मा और ज्ञान-प्रकाश। शक्ति-तत्व से मतलब है—'शाश्वत अनुग्रह'—आत्म-संतोष और पूर्ण शान्ति। पूतात्मा और अनन्त कृपा की सामूहिक कल्पना ही से परम शिव का भाव उदय होता है। साधक का लक्ष्य उसी का ज्ञान और यह भाव जगाना है कि उसका आविर्भाव सार्वभौम है। वे मूर्ख हैं, जो इस ज्ञान से वंचित हैं और इस लिए बार-बार जन्म लेते हैं।

80

लोलुक् नार ललि ल्वलि ललनोवुम,
मरनय म्वयस् त रुजस न जरै ।
रँगरिछ् जातुसइ क्याह् न रंग होबुम,
'बो' दपुन चोलुम क्याह् सन करै ॥
रावन मंजय रावुन रोवुम.
राविथ अथि आयस भवसरै ।
असान-गिन्दान सहजुइ प्रोवुम,
दपनुय कोरुम पानस सरै ॥

प्रेत की ज्वाला को अपनी कोख में भर कर मैंने सह लिया। मरने से पूर्व ही मर गई, किंचित् भी बची न रही। मेरी जाति निर्वर्ण थी, फिर भी सभी रंग मैंने अपना लिये। 'मैं हूं।' यह प्रवृत्ति मुझ से छूटी, और क्या कर सकती! मैं खो गई, उसी में से मेरा खोना खो गया—खो कर ही भवसागर में मिल गई (प्रकट हुई।)

हंसते-खेलते मैंने सहज (तत्वज्ञान की) प्राप्ति की। यही कथन मैंने आत्मबोध का आधार बनाया।

81

लोलकि व्वखल वालिंज पिशिम्,
व्वकल् च़जिम त रुज़स रस्स।
बुज़ुम त जाजिम पानस च़ुशिम्,
कव जान तव सूति मर किन लस्सं।।
बोय ना म्वयस् त बोय ना मर,
यलि अँछौ डींशिथ कनौ बूज़िथ केंह् बाव।[1]

प्रीति के खरल में मैंने दिल को पीसा। कुवासना मिट गई और मैं शान्त रही। फिर मैंने दिल को भूना-पकाया और उसका स्वाद चखा। कैसे जानूं कि इस (क्रिया) से मैं मर जाऊंगी या जीवित रहूंगी! जब मैं आंखों से देख और कानों से सुनूंगी तो मैं न मरी और न मर जाऊंगी। (पाठभेद)—जो कुछ मैंने देखा-सुना, उसको जब मैं व्यक्त कर सकूं ता मैं सदैव जीवित हूं।

82

पोत् ज़ूनि व्वथिथ मोत् बोलनोवुम्,
दग् ललनावुस दयि सँजि प्रये।
ललि्-ललि् करान् लाल वुज़नोवुम,
मीलिथ तस मन श्रोच़् योम् दहे।।

निशा के अन्तिम प्रहर में जब चन्द्रास्त होने को था, उस घड़ी जागकर मैंने इस चंचल मन को बहुत समझा-बुझा कर परमार्थ की ओर प्रवृत्त कर दिया। दई की

पाठभेद : 1. यलि अछौ डेंशं त कनौ बोज।

लगन के कारण मैंने व्यथा-वेदना प्रसन्नभाव से सह ली। 'मैं लल हूं।' 'हां'? मैं लल हूं।' यही पुकार कर मैंने अपने प्रिय (इष्ट) को जगाया। उससे मिलकर मेरा मन-युक्त दस इन्द्रियों का यह देह पावन हो गया।

83

श्य वन् चॅटिथ शशिकल् वुज़ुम्,
प्रकृत होंज़ुम पवन सूतिय।
लोलकि नार वॉलिज़ बुज़ुम्,
शंकर लोवुम् तमिय सूतिय्॥

छः वन (शक्ति के छः चक्र) लांघ कर मैं आई और शशिकला को मैंने उजागर कर लिया। अर्थात् जब मैंने सांसारिक बन्धन के विभिन्न प्रलोभनों को योगादि क्रियाओं द्वारा नियंत्रित कर लिया, तभी उस चन्द्रकला तक पहुंची, जो परम् शिव का स्थान है। इसके लिए मुझे प्राणाभ्यास द्वारा प्रकृति को सुखाना अथवा एक प्रकार से होमना पड़ा और प्रीत (देवानुराग) की आंच से अपना हिया (दिल) भूनना पड़ा। इसी (योगादि तप) द्वारा मैं शंकर को पा सकी।

84

दमी ड्यूंठुम शवनम् प्यवान्,
दमी ड्यूंठुम प्यवान् सूर।
दमी डींठुम् अनिगट रातस्,
दमी ड्यूंठुम द्रहस् नूर॥
दमी आसुस ल्वकुट् कूरा,
दमी सपनिस जवाँ पूर्।

दमी आसुस फेरान-थोरान् ,
दमी सपनिस दजिथ सूर ॥

(सांसारिक वैचित्र्य तथा रूप-परिवर्तन का वर्णन करते हुए 'लल' कहती है)—

अभी मैंने शबनम पड़ती देखी और क्षण भर में ही पाला पड़ता पाया। अभी रात का अन्धकार देखा; तो अभी दिन का उजाला देखा। अभी मैं अल्पायु बाला थी, दम-भर में ही पूर्ण युवती बनी। अभी मैं चलती-फिरती थी और अभी जल कर राख बन गई।

85

दमी डींठुम नद वहवनिय,
दमी ड्यूंठुमस् सुम् न त तार।
दमी डींठुम थर फ्वलवनिय,
दमी ड्यूठुम गुल न त खार ॥

अभी मैंने प्रवाहमयी नदी देखी तो अभी जल का ऐसा विस्तार कि जिसपर न कोई पुल और न ही कहीं पार उतरने का स्थान; अर्थात् जिसका कहीं ओर-छोर ही नहीं। अभी मैंने विकासमान पुष्प-लता देखी; पर अभी देखा—न कहीं फूल था और न काँटे।

86

दमी डींठुम् गजि् दजवनिय,
दमी ड्यूंठुम दुह न त नार्।
दमी डींठुम पाण्डवन हँज माजी,
दमी डींठुम क्राजी मास ॥

अभी मैंने जलता चूल्हा देखा और अभी देखा तो न कहीं धुआं था और न अग्नि। अभी पाण्डवों की मां को (सुख-सम्पन्न) देखा तो अभी (माता कुन्ती को) कुम्हारिन के घर में शरणागत मौसी के रूप में पाया। (यहां पर 'कुन्ती माँ' के शक्ति-सम्पन्न पाण्डवों सहित राजा से रंक बनने की उस कथा का संकेत है, जब पाण्डवों को मां-सहित अज्ञातवास में एक कुम्हार के घर शरण लेनी पड़ी थी।)

87

गाटुला अख् वुछुम ब्वछि सूति् मरान्,

पन् ज़न हरान पुहनि वाव लाह्।

न्यश्बोध अख् वुछुम वाज़स् मारान्,

तन 'लल' बो प्रारान् छ्ऽन्यम् ना प्राह्॥

(सांसारिक विषमता का अनुभव व्यक्त करते हुए 'लल' कहती है) :—

मैंने एक बुद्धिमान को भूखों मरते देखा मानो पौष-पवन (पतझड़) से वृक्षों के पर्ण झर-झर गिर रहे हों। एक बुद्धिहीन को देखा अपने रसोइए को पीटते हुए। (यह वैषम्य जबसे देखा) तब से मैं 'लल' उस क्षण की टोह में हूं, जब मेरे सभी भवबन्धन छूट जायं।

88

केंचन् दितिथम गुलाल यच़ुय,

केंचन् ज़ोनुथ न दिनस् वार।

केंचन छुनिथम् नलि् ब्रह्म हच़ुय,

भगवान चानि गच् नमस्कार॥

कइयों को तूने (हे विधाता!) भर-भर गुल लाला दिये, (अर्थात् सुख-सन्तति से मालामाल कर दिया) और और कइयों को कुछ न देना ही उचित जाना। कइयों के गले ब्रह्म-हत्याएं (लड़कियां-ही-लड़कियां) मढ़ दीं। भगवान्, तुम्हारी गतिविधि को नमस्कार हो। (ईश्वर, तेरी लाला तू ही जाने।)

(सम्भवतः 'लल' के काल में कन्या-जन्म समाज की कुरीतियों के कारण पापों का परिणाम माना जाता था ।)

89

केंचन ह्युतथम् ओरय आलव,
केंचव रचायि नालै व्यथ् ।
केंचन अछि् लजि मस् च्यथ तालव,
केंचन पपिथ गय हालव ख्यथ् ॥

कइयों को तूने अपने आप ही बुलाया अर्थात् जन्मतः ईश-कृपा का भागीदार बनाया और कुछ वे हैं, जिन्होंने वितस्ता को ही गले लगा लिया । कुछ हैं कि हाला पी कर उनकी दृष्टि छत की ओर एक टक जम गई है । और कइयों की पकी फसलों को टिट्डियां खा गईं ।

केंचन रनि् छय शिहिज बूनि्,
न्यबर नेरौ शुहुल करौ ।
केंचन रनि छय बर-प्यठ हूनि्,
नेरौ न्यबर त जंग् ख्यथि वो ।
केंचन रनि् छय अदल्-त-बदल्,
केंचन रनि छय जदल छाय ॥

कइयों की रानियां (पत्नियां) छायादार चिनार-सी हैं—बाहर आये कि उसकी छाया तले राहत मिल जाये । कइयों की बीवियां द्वार की कुत्तिया जैसी हैं, बाहर आये नहीं कि काटने को दौड़ीं कइयों की पत्नियां गड़बड़ करने और उलझन बढ़ाने वाली हैं तो कुछ पत्नियां ऐसी हैं, जो धूप-छांह की तरह आवश्यकतानुसार सहायक होती हैं ।

91

केंह् छी न्यंदरि हती वुदी,

केंचन व्वदनि् न्यसर् प्ययी।

केंह् छी स्नान करिथ अपुतिय्,

केंह् छी गेह् बजिथ ति अक्रयी॥

कुछ हैं, जो दिखते निद्रामग्न हैं, पर होते हैं, जागृत और कुछ वे हैं जो जागते हुए निद्रारत रहते हैं। कुछ स्नान करके भी अपवित्र होते हैं और कुछ गृहस्थ धारण करने पर भी अक्रय होते हैं, अर्थात् कर्म-लिप्त नहीं होते। कहने का सार यह है कि मानव-शरीर कर्त्तव्यपरायण रहते हुए भी आत्म-स्वातन्त्र्य द्वारा परम् पद पा सकता है।

92

ग्रट छु फेरान ज़ेरे-ज़ेरे,

आहकुय ज़ानि ग्रटुक् छ़ल।

ग्रट यलि फेरि तय ज़ाव्युल नेरे,

गूं वाति पानै ग्रट-बल्॥

चक्की निरन्तर घुमाते रहो तो घूमती रहेगी, किन्तु चक्की के चक्कर का रहस्य यदि कोई जानता है तो वह है उसका अक्ष। जब चक्की का यह अक्ष चले तो महीन आटा पिस कर निकल आये और गेहूं स्वत: चक्की के पाटों के निकट पहुंच जाता है। अर्थात् यदि साधक लक्ष्य तक पहुंचने का सतत यत्न करता रहे तो वह ध्येय को पायेगा ही।

93

यथ सरस् सिरि् फोल ना व्यची,

तथ् सरि सकलां पोन्, च्यन् ।

|　　　|

मृग सृगाल गण्ड् जलहस्ती,

|

ज्यन् ना ज्यन् त तातुय प्यन् ॥

जिस सर (सारोवर) में राई का दाना भी समा न सके, उसी सरोवर के पानी से सबकी प्यास बुझती है। मृग, श्रृंगाल, गैंडा और जल-हस्ति (जल-हाथी)—सब इसी में उत्पन्न होते ही गिर जाते हैं।

टिप्पणी : स्रष्टा के मुकाबले में सृष्टि की कोई महत्ता नहीं। फिर भी अज्ञानी ो एक आश्चर्य मानते हैं और उससे राग बढ़ाते हैं। जीवन का भी अनन्त के मुकाबले में क्षणभर से अधिक महत्व नहीं। वस्तुतः अमुक्त आत्मा जिस भी रूप में प्रकट हो, शाश्वत के दृष्टिकोण से वह क्षण भर ही जीवित रहती है और मर कर बार-बार जन्म लेती है।

94

|

त्रयि न्यंगि सराह् सरि सरस,

|

अकि न्यंगि सरस अर्शस जाय ॥

|　|　|

हरम्वख कव सर अख सुम सरस,

सति न्यंगि सरस शिन्याकार ॥

तीन बार सरोवर को जलमय-ही-जलमय (आप्लावित) देखने की याद है। एक बार मात्र अर्श (गगन) पर स्थान (टिकने का थल) देखा, ऐसा स्मरण है। एक बार की याद है कि हरमुख से कौंसर तक एक पुल देखा। सात बार सरोवर को शून्याकार (विलीन) होते देखा। परम पद-प्राप्ति कर 'लल' को पूर्वजन्मों की स्मृति पर भी नियन्त्रण प्राप्त हो सका (जलप्रलय, महाप्रलय और सृष्टि का ज्ञान भी उनसे तिरोहित न रहा।)

टिप्पणी : हरमुख से कौंसर तक जलमय होने का संकेत संभवतः कश्मीर घाटी के 'सतीसर' की ओर है, जिसका जल निकाल कर कश्यप ऋषि ने कश्मीर घाटी का निर्माण किया।

95

कुस् डिगि त कुस जागि,

कुस् सर वतरि तेली ।

कुस् हरस पूजि लागि,

कुस परम पद मेली ॥

कौन सुप्त है और कौन जागृत ? कौन-सा सरोवर है, जिससे अनवरत जल बूंद-बूंद रिसता (बह निकलता) है ? कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो हर (शिव) के पूजार्ह हो ? वह कौन-सा परम्पद है, जो (साधनोपासना के फलस्वरूप) प्राप्य है ?

96

मन् डिगि त अक्वल जागि,

दाङि् सर पंचयन्दि् वतरि तेली ।

स्वव्यचार पोश हरस पूजि लागि,

परम पद चीतन शिव मेली ॥

मन निद्रारत है और 'अकुल' जागृत– अर्थात् जब जीवात्मा सुप्त होती है तो वह उसकी मःनस्थिति कहलाती है और जब जीवात्मा, प्रकृति, देश, काल, पंचत्व की अनुभूति से ऊपर उठती है तो वह सदा जागृत होती है। सुदृढ़, (सदा रहने वाला) सरोवर पचेंद्रियां हैं, जिनसे सदा जल निःसृत होता है। स्वात्म-चिंतन का जल है, जिससे हर (शिव) की पूजा की जाती है। इस (साधनोपार्जन) से जो परम्पद प्राप्य है, वह है शिव-चैतन्य की उपलब्धि।

टिप्पणी : 'कुल' का अर्थ है वंश, जो इन अंगों पर आधारित है—आत्मा, प्रकृति, देश, काल, पंचभूत (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द)। जब आत्मा इनसे ऊपर उठती है और परम शिव का तादात्म्य पाती है तो आत्मा उद्बुद्ध होती है।

97

शिव गुर् ताय केशव पलनस्,

ब्रह्मा पायरेन व्वल्स्यस् ।

यूगी यूग कलि परज़ान्यस्,

कुस् दीव अश्ववार प्यठ चड्यस् ॥

शिव घोड़ा है और केशव (विष्णु) काठी। ब्रह्मा रिकाबों की शोभा बढ़ाता है। योगी योग-कला से पहचानता है कि वह कौन-सा देव है जो इस अश्व पर चढ़ कर सवारी करने वाला है।

98

अनाहत ख--स्वरूफ शून्यालय्,

यस नाव न वरण न गुथंर न रूफ ।

अहँ व्यमर्श नाद-बिन्दुय यस वोन,

सुइ दीव अश्ववार प्यठ चड्यस् ॥

जो अनाहत-ओइम् की अनश्वर ध्वनि है, जो आकाश-स्वरूप (सर्वत्र व्याप्त) है, जिसका वास शून्यालय (देशाकालातीत) सहस्रार है, जिसका न कोई वर्ण है न गोत्र और न ही कोई रूप। जिसके विषय में कहा जाता है कि आत्मविमर्श (तत्वनिरुपण में) वह नाद व बिंदु का ही प्रतिबिंब है। वही है देवता, जो अश्व पर चढ़ कर सवारी करता है।

99

जननि ज़ायायि रुति् तय कुतिय,

करिथ व्वदरस बहु कलीश ।

| |

फीरिथ द्वार बज़नि वाति् ततिय,

|

शिव छुय कूठ तय चेन व्वपदीश[1] ॥

जननी से भले-चंगे स्वस्थ उत्पन्न : ए, यद्यपि उनके उदर को बहुत क्लेश दिये। फिर-फिर कर वे वहीं लौट आये और उसी द्वार की प्रतीक्षा करने लगे। शिव का पाना कठिन है। ध्यान रख, यह उपदेश है।

पाद-टिप्पणी में दिये हुए अन्य 'ललवाख' से इसका अर्थ स्पष्ट होता है। इसका तात्पर्य है कि—तुम ने गर्भ में ही जो नियम बांधा था, उसे स्मरण कर। जीते जी ही तू मरे, तब तुम्हारा मरतबा (पद) ऊंचा होगा।

100

|

योसय् शेल[2] पीठस त पटस्,

स्वय् शेल[3] छय प्रथवुन दीश।

|

स्वय शेल[4] शूबवनिस ग्रटस,

|

शिव छुय कूठ तय चेन व्वपदीश ॥

जो शिला पीठ (चौकी) और पट (पाषान्मय समतल सड़क) पर है, वही शिला पृथ्वी-तल पर है। वही शिला शोभायमान चक्की में है। शिव-प्राप्ति दुष्कर है। इस उपदेश को सावधानी से समझ ले।

टिप्पणी : विभिन्न नाम-रूप होते हुए भी मूल तत्व एक ही है।

101

| | |

यहै मातृ-रूप पय दिये.

| | | |

यहै भार्या-रूप कर विशोष।

1—नियम कर्योथ गरबा, च्यतम कर बा प्ययी,।
मरन ब्रोंठइ मरबा, मरिथ मतंबे हुरी ॥

2, 3, 4—शिला।

यहै माया-रूप अन्ति जुब ह्यये,

शिव छुय क्रूठ् तय च़े न व्यपदीश ॥

(नारी की महिमा वर्णन करते हुए 'लल' कहती है)

माता के रूप में यही (शिशु को) दूध पिला कर उसका भरण-पोषण करती है और यही (नारी) भार्या-रूप में विशेषतः अपनी (संगिनी) बन जाती है। यही अन्ततः माया-रूप धारण करके प्राण-भरण तक कर लेती है। शिव-प्राप्ति कठिन है। तनिक सोच समझ ले, यह उपदेश है।

102

रव मत थलि-थलि ताप्तिन्,

ताप्तिन् व्वयम दीश ।

वरुन मत लूक घर अच़्तिन्,

शिव छुय क्रूठ् तय चेन व्वपदीश ॥

कभी हो सकता है कि रवि थल-थल (हर स्थल) को प्रकाशमान न कर दे? अर्थात् सूर्य-ताप सर्वत्र उपलब्ध है, वह (सूर्य) मात्र उत्तम देश ही नहीं तपाता। वरुण (जल देवता) भी घर-घर में प्रविष्ट हुए बिना नहीं रहता। अर्थात् ईश्वर-प्रदत्त सूर्य-जल आदि जिस प्रकार भेदभाव रहित सबके लिए हितकर हैं, उसी प्रकार शिव भी सबका है, सबके लिये है। इसी तत्व (शिव) का समझना कठिन है। ज़रा ध्यान दे कर यह उपदेश सुन ले।

103

शिव् छुय जाव्युल जाल वाहराविथ्,

केच़ न मंज़ छुय् तरिथ क्यथ् ।

जिन्द नै वुछहन् अद कति मरिथ्,

पान मंज़ पान् कड़ व्यचारिथ क्यथ् ॥

शिव महीन जाल बिछाये हुए (सर्वत्र व्यापक) है। देखो तो, सब शरीरों (अस्थि-पंजरों-पदार्थों) में किस प्रकार रच-बस गया है ! यदि तू जीते-जी उसका साक्षात्कार न कर पाया तो मर कर फिर कैसे कर पायेगा ! विवेक और चिन्तन कर स्वात्म में से अहंतत्व निकाल दे ।

104

असे प्वन्दे ज़्वसे ज़ामे,

न्यथुइ स्नान करि तीर्थन् ।

वहरि वहरस नोनुय आसे.

निशि छुय् त परज़ानतन् ॥

वही (शिव ही) है, जो हँसता है, छींकता है, खांसता है. जम्हाई लेता है तीर्थों पर वही नित्य स्नान करता है। सारा साल वह अनवरत निर्वसन (दिगम्बर) रहता है। वह तो तुम्हारे निकट है, उसे पहचान ले। अर्थात् अण्ड-ब्रह्माण्ड की सभी गतिविधियों का प्रेरक (शिव) तुम से दूर नहीं ; मात्र पहचान (प्रतिभिज्ञा) की कमी है ।

105

शिव छुय् थलि थलि रोज़ान,

मो ज़ान ह्योन्द त मुसलमान ।

त्रुक् अय छुख त पान् पर्ज़नाव,

स्वय छै साहिबस सूति ज़ानी ज़ान् ॥

शिव स्थल-स्थल पर (सर्वत्र) व्यापक है। हिन्दू और मुसलमान में कोई भेदभाव न कर। यदि तू बुद्धिमान है तो अपना अस्तित्व (आत्म-तत्व) पहचान। वही वास्तव में साहिब (शिव) के साथ तुम्हारी जानकारी है !

106

तन्तर् गलि तय मन्थर स्वचे,
मन्थर् गोल तय मोतुय च.यथ् ।
च.यथ गोल तय केंह ति ना कुने,
शून्यस् शुन्याह् मीलिथ गौ ॥

तंत्र (आगम शास्त्र-कथन) की इति हुई तो मन्त्र (रहस्यपूर्ण जप-तप-योगादि क्रिया) शेष रहा —अर्थात् कथनी (ज्ञानोपार्जन) की सीमा के परे ध्यानोपासना का क्षेत्र बचा रहता है। (और जब) मन्त्र भी मिटा तो मात्र चित्त (चिन्मय तत्व) बचा रहा। चित्त भी जब मिट कर शिवतत्व में मिल गया तो कहीं कुछ न रहा अर्थात् सब अभावमय हो गया—शून्य में शून्य विलीन हो गया।

107

भान् गोल तय प्रकाश आव जूने,
चन्दर् गोल तय मोतुय च.यथ।
च.यथ् गोल तय केंह ति न कुने,
गय भूर् भुवः स्वर् व्यसर्जिथ क्यथ् ॥

भानु (सूर्य) अस्त हुआ तो चन्द्र-ज्योत्सना फैल गई। चन्द्र भी छिप गया तो चित्त बचा रहा। चित्त (चिन्मय आभास) भी मिटा तो कहीं कुछ न रहा। सब देश-काल की परिधि से परे हो गया और भूः भूवः स्वः (आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तत्व) सब नामशेष हो गये ; भूमि, आकाश और अवकाश सब ब्रह्मतत्व में विलीन हो गये।

टिप्पणी : चन्द्र और सूर्य से यहां साधना के निकृष्ट और श्रेष्ठ पद अभिप्रेत हैं। जब घ्यानावस्थति में ये पद विद्यमान नहीं रहते तो साधक को चिन्मयता के अतिरिक्त कोई आभास नहीं रहता। जब यह आभास भी शिवतत्व में लय हो जाता है तो समष्टि और व्यष्टि का अन्तर भी मिट जाता है।

108

अभ्यासी सव्यकासि लय् व्वथू
गगनस् सगुन म्यूल समिच़्.टा ।
शून्य् गोल अनामय म्वतु,
योहै व्वपदीश छुय़् बटा ॥

जब योगाभ्यास द्वारा दृश्यमान संसार का यह विस्तार लय हो जाता है ; जब सगुण (ब्रह्माण्ड) गगन (आकाश-अवकाश) में मिल जाता है अर्थात् जब जीवात्मा योगादि अभ्यास द्वारा अपनी सीमित सत्ता को सीमातीत शिवतत्व में लीन कर देती है तो शून्य (ब्रह्माण्ड-युक्त अवकाश) भी नामशेष हो जाता है---बचा रहता है मात्र अनामय (रोग-शोक-उपाधि विहीन) शिवतत्व । हे ब्रह्मण ! यही उपदेश (तत्व-निरूपण है ।)

109

वाख मानस क्वल अक्वल ना अते,
छ्.वपि मुद्रि अति ना प्रवीश ।
रोज़ान शिव शख्ति ना अते,
म्वति यी कुंह त सुय व्वपदीश ॥

वहां (परमतत्व) में न वाणी की गति है न मन की पहुंच । वहां 'कुल' (36 तत्वों की सृष्टि) और 'अकुल' (सगुण सृष्टि से परे मनस्तत्व-आकाशादि) की भी पहुंच नहीं । मौन-मुद्राओं का भी वहां कोई प्रवेश नहीं । (और तो और) नाम-रूप-मय शिव और शक्ति भी वहां (परम्-पद में) नहीं रहते । इस सबसे परे जो कुछ बचा है—वही प्राप्य है---उसी को पाने की शिक्षा है ।

110

च़ ना बो ना ध्येय ना ध्यान्,
गौ पानै सर्व क्रिय मशिथ ।
अन्यौ ड्यूंठुख कें‌छ़् ना अनवय,
गयि सथ लयि पर पशिथ ।।

वहां न 'तू' है न 'मैं' हूं ध्येय है और न ध्यान । सर्वक्रयी (विश्वकर्त्ता) स्वयं भी (उस स्थिति में) गुम है । अन्धों ने इस दृष्टान्त का कोई अर्थ नहीं पाया—अर्थात् जो वस्तुतत्व और आत्मतत्व के रहस्यों से अनभिज्ञ हैं ऐसे ज्ञान-चक्षुहीन लोगों को यह बात अर्थहीन लगी, किन्तु जब सत् (सज्जनों) ने पर (उत्तम-ईशतत्व) का साक्षात्कार किया तो वे तल्लीन हो गये । (अन्यार्थ) जब साधक को परमशिव (शिवदृष्टि) मिली तो सप्त भुवन लय हो गए—एक परम् शिव की सत्ता शेष रही ।

111

तूरि सोलल खोत ताय तूरे,
ह्यमि् तूर गयि ब्यन-अब्यन् व्यमशा ।
च़ैतन्य़ रव् भाति सब समै,
शिवमय च़राच़र जग् पश्या ।।

शीत जब सलिल (जल) पर अभिभूत होती है तो वह जम कर यख (जमी हुई बर्फ़) बनता है या हिम का रूप धारण करता है । विमर्श से काम लिया जाय तो जल के इन तीन रूपों (सलिल, यख और बर्फ़) में भेद होते हुए भी मूलतः कोई भेद नहीं । जब चैतन्य (विवेक-रूपी) रवि इनपर चमकता है तो ये सब समान (एकाकार) होते हैं । तब चराचर जगत् शिवमय दिखाई देता है ।

112

च़ु य दीव गरतस् त धरती स्रजख,

च़यै दीव दितिथ कंजन् प्राण ।

च़ुइ दीव ठनि रुस्तुय वजख,

कुस जानि दीव चोन परमान ।।

हे देव ! तुम्ही इस सृष्टि और धरती पर छाये हुए हो । हे देव ! तुम्हीं ने इन भौतिक शरीरों में प्राण फूंक दिये । ध्वनिहीन (निस्स्वन) होते हुए भी, हे देव, इस ब्रह्माण्ड में तुम्हारी ही गूंज-अनुगूंज है । हे देव ! कौन तुम्हारा परिमाण (माप-तोल) जान सकता है !

113

कुन्यर् अय् बोजख कुनि नो रोजख्,

कुनिरन् कोर्नम हुनी आकार ।

कुनुय आसिथ द्वन हुन्द जंग गोम्,

सुय बेरंग गोम करिथ रंग ।।

अगर तू समझे, एकेश्वरवाद क्या है तो तुम्हारी (अँह) सत्ता कहीं न रहेगी । इसी एकत्व-ज्ञान ने मेरा (स्व) आकार लय कर दिया—अर्थात् 'मैं' उस (परम तत्व) में मिट गई । एक होते हुए भी दुइ (द्वित्व) की यह जंग जारी है । स्वयं वह बेरंग (निर्वर्ण) है, किन्तु मुझे रंग (वर्ण-भेद) में रंग गया ।

114

यिमै श्य च़य तिमय श्य स्य,

श्यामगला च़य ब्यन तातिस् ।

योहै ब्यन-अभीद च़य त म्य,

च़ श्यन् स्वामी बो श्यय मुशिस़् ॥

हे श्यामगला (नीलकंठ), जिन छः विशेषणों से तू युक्त है, वे ही छः विशेषण मेरे भी हैं। किन्तु तुम्हारे बिना मैं विपत्ति में पड़ी हूं। तुम में और मुझ में यही भिन्नता है कि तुम छः के स्वामी हो और मुझे छः लूट गये। (यहां छः विशेषणों के अनेक अर्थ लिये गए हैं—मनुष्य के विषय में छः से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य अथवा पँचेन्द्रियां और मन या शैशव, वार्द्धक्य आदि छः अवस्थाएं—अर्थ लिया जाता है और नीलकण्ठ के विषय में छः विशेषणों से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निरपेक्ष, सर्वशक्तिमान, निर्विकार, निर्गुण आदि अर्थ अभिप्रेत हैं। परन्तु शैवमतवादी शिवाद्वैत के विश्लेषण में यह मानते हैं कि साधक जबतक छः (विकारों) के अधीन है तबतक वह (शिव-तत्व से) दूर है और जब वह उनका स्वामी बनता है तो साधक निज स्वरूप (परम्पद) को पाता है।

1 5 (क)

लल् बो द्रायस कपसि-पोशिचि सच़ुइ,

कांड़ि त दूनि् करनम् यच़ुइ लथ ।

तुयि यलि खारिनम् जाविजि तुऐ,

वोवरि वान गयम् अलांज़ुइ लथ् ॥

मैं 'लल' उसी उमंग और चाव से इस संसार में आई थी जिस प्रकार कपास के डोडे से फूल खिल उठता है। परन्तु बेलने की रगड़ और धुनिये की धुनकी ने तब मेरी खूब गत बनाई, जबकि महीन रेशे बना-बना कर मेरा कण-कण उड़ा दिया गया। जुलाहे के करघे पर पहुंच कर मैं उलटे लटका दी गई।

115 (ख)

दोबि् यलि छावनस् दोबि्-कनि् प्यठुइ,
सज़् त साबन मछ़नम यच़् य ।
सचि् यलि फिरनम् हनि हनि् काच़् य,
अद ललि म्य प्रावुम परम-गथ् ।।

(वस्त्र के रूप में) जब धोबी ने मुझे पत्थर पर दे पटका और भर-भर साबुन-सोडा मल-मल कर मुझे साफ कर दिया, फिर दर्ज़ी ने कैंची से मेरे अंग-अंग काट लिये (इतनी सब यातनायें सह कर और अवस्थाएं लांघकर) तब मैं कहीं परम् गति को पा सकी ।

116

दीशि आयस् दश दीशि च़लिथ,[1]
च़लिथ च़ोटुम शून्य् अद वाव् ।
शिवइ ड्यूँठुम् शायि शायि मीलिथ,
षह् त त्र्य त्रोपिमस त शिवुइ द्राव् ।।

दस दिशाओं में घूम-फिर कर अपने देश से 'मैं' यहां आई । यों इन बन्धनों से मुक्त हो कर मैंने तूफ़ान बन आकाश को भेद दिया अर्थात् योग्याभ्यास द्वारा मैंने चिदाकाश में प्रवेश किया । देखा तो वहां सर्वत्र शिव-ही-शिव व्यापक था । जब मैंने छः (पंचेन्द्रिय व मन) और तीन (मलत्रय) के कपाट बन्द कर दिये तो वहां शिव-तत्व ही मूल कारण सिद्ध हुआ ।

टिप्पणी : मलत्रय हैं 1—आणवमल, जिससे जीव अपने आप को सीमाबद्ध

पाठभेद—1. तीलिथ

समझता है। 2—मायामल, जिससे जीव में भेद-बुद्धि आती है और 3—कर्ममल जिससे सुख-दुख पैदा होते हैं।

117

स्वन् द्राव् वह्नि त मल् गौ वथिथ,
यलि म्य अनलाह् द्युतमस् ताव।
कलुर जन गयस लोल्ह व्यगलिथ,
यलि कठकोश चोल निशि रव द्राव।
लल बो रूज़ुस त्यलि शिहलिथ,
यलि च़्यतस् प्यौ बो तस् नाव॥

स्वर्ण को जब मैंने वह्नि (अग्नि) में तपाया और जब वह भट्टी में से तपकर निकला तो उसकी मलिनता जल (मिट) गई। जब सूर्य निकला, बर्फ पिघल गई तो मैं जमी हुई यख की तरह प्रीत की मारी पिघल गई। मैं 'लल' तब शान्तमन बनी, जब मुझे यह सुधि आई कि 'मैं' उसी का नाम है। जो कुछ है वह परम शिव ही है।

118

शुन्युक मादान् कोडुम् पानस्,
म्य ललि रुजम न ब्वद् न होश।
भेदी सपनिस पानय पानस,
अद कमि गिलि[1] फोल ललि पम्पोश॥

पाठभेद—1. हिलि (काई में)

मैंने शून्य का एक सीमातीत मैदान (क्षेत्र) पार किया। मुझ 'लल' को कोई सुध-बुध न रही। (जब) स्वात्म-तत्व के भेद (रहस्य) से मैं अभिज्ञ हुई, तब (देखते ही बनता था कि) 'लल' के लिए कीचड़ से कैसे कमल खिल उठा :

119

मिथ्या कपठ असथ त्रोवुम्,

मनस कोरुम सुय व्वपदीश।

जनस अन्दर कीवल ज़ोनुम्,

अनस ख्यनस कुस छुम द्वीश ॥

मिथ्या, कपट और असत्य का त्याग किया, यही उपदेश मैंने मन के उपयुक्त समझा। जन-जन में मैंने 'केवल' (एक परम्‌तत्व) को जाना. फिर भला अन्न खाने में किसी से कोई द्वेष (घृणा) क्यों हो! जब सर्वजन में एकात्मा (शिव-तत्व) का वास है तो किसी से घृणा क्यों की जाय!

120

आयस ति स्योदुय त गछ़ ति स्योदुय,

स्यदिस होल म्य कर्यम् क्योह् ।

बो तस् आसुस आगरै व्यज़इ,

व्यदिस त व्यंदिस कर्यस् क्याह् ॥

सीधी ही आई थी और सीधी ही जाऊंगी भी—अर्थात् जन्म से ही मैंने सरल-सहज स्वभाव अपनाया और मरणपर्यन्त मेरा जीवन-व्यवहार सरल रहेगा। (ऐसे में) मुझ सीधी का कोई टेढ़ा-तिरछा (कुटिल जन) क्या बिगाड़ेगा ? मुझे वह (परम तत्व) आदिस्रोत से ही जानता है, मुझ जानी-पहचानी को वह क्या करेगा।

121

लल् बो चायस स्वमन् बाग्-बरस्,

वुछुम शिवस शक्त मीलिथ त वाह् ।

तति् लय करम् अमृत-सरस्,

जिन्दै मरस् त म्य करि क्याह् ॥

मैं 'लल' जब स्वमन-रूपी बाग के द्वार से भीतर गई तो देखा—शिव शक्ति से मिला हुआ था । मैं आनन्द-विभोर हुई और वहीं मैं अमृत-सर में विलीन हो गई । मैं तो जीते जी ही मर गई—मुझे क़ाहे की चिन्ता है !

122

अन्दर् आसिथ न्यबर छो़ंडुम्,

पवनन रगन करनम् सथ् ।

ध्यान किञ् दय जगि कीवल जोनुम्,

रंग गौ संगस् मीलिथ क्यथ् ॥

भीतर था तब भी मैं उसको बाहर ढूंढ़ती रही । प्राणायाम (प्राणापान-व्यानोदान-समान के विधिवत् नियन्त्रण) ने मेरी रगों को सांत्वना दी । ध्यानादि योग-क्रिया द्वारा मैंने जगत में दई की एकता (कैवल्य) का अनुभव किया । इस प्रकार रंग (विश्व) संग (विश्वात्मा) में निमज्जित हो कर एकाकार हो गया ।

123

सम्सारस आयस् तपसुइ,

ब्वधि प्रकाश लोबुम सहज ।

मर्य्‌म न कुंह्‌ त मर न कांसि,

मर नेछ्‌ त लस नेछ्‌ ॥

मैं तपस्विनी बनकर इस संसार में आई। बुद्धि (ज्ञान) प्रकाश से मैंने सहज (स्वात्म-परमात्म-बोध) पा लिया। न मेरा कोई मरेगा और न मैं ही किसी के लिए मरूंगी। मरूं तो वाह-वाह! जीवित रहूं तो वाह-वा! अर्थात्‌ आत्म-बोध जीवन-मरण की अपेक्षा से परे है।

124

द्वादशान्त्‌ मण्डल यस्‌ दीवस-थजि,

नासिक-पवन दारि्‌ अनाहत रव।

स्वयम्‌ कलपन अन्ति च़जि,

पानय सु दीव्‌ त अच्‌र्न कस्‌ ॥

जिसने द्वादशान्त मण्डल (ब्रह्मरंध्र) को देवस्थली (परम शिव का आवास) समझा-प्राण वायु का नियंत्रण करके जिसने अनाहत ध्वनि, (ओ३म्‌ की अनुगूंज) सुनी—अर्थात्‌ हृदय से नासिका-द्वार तक के श्वासोच्छ्वास में जी ओ३म्‌ का ही आभास पाता रहा और अन्ततः जिसका अपने बारे में कलपना-भरमाना मिट गया—वह स्वयं 'देव' है। फिर अर्चना किसकी!

125

गगन च़ुइ भूतल्‌ च़ुइ,

च़ुइ छुख द्यन-पवन-त-राथ्‌।

अर्ग चन्दुन पोश पोज़् च़ुइ,

च़ुय छुख् सोरुय त लागिज़ी क्याह् ।।

तू ही गगन है तू ही भूतल, तू ही दिन, पवन और रात है। अर्घ्य, चन्दन, पुष्प और जल भी तू ही है। जब तू ही, हे देव, सब कुछ है तो भेंट करूं तो क्या ?

126

सत् संगे पवितर दोरुम्,

नवि सच् रूज़स व्रोपरिथ बर् ।

दश दशमी द्वार प्रजलोवुम,

ईकादश चन्द्रमस् करम लय् ।

द्वादशमण्डल द्यख शुमरोवुम,

त्रयूदश त्रिबेनी नावुम काय ।

चतुर्दशि च़वदाह् भवन् शमाविम्,

पूर्ण पांचदशि चन्द्रन् कोरुम् व्वदय् ।

ओक्दोह भूगी पान् संदोरुम्.

रससति रूज़स् कल्पन त्राविथ ।

स्वय् हा मालि करम् प्वतल्यन् पूज ।।

(इस वाक्य में 'ललद्यद' शुक्लपक्ष के संकेत वाक्यों द्वारा योगाभ्यास के विभिन्न चरणों-आयामों का रहस्य-निरूपण करती है)

प्रारम्भ में मैंने सत्संग का 'पवित्र'[1] धारण किया। नवें दिन (नवमी को) नई आशाओं के साथ मैंने कपाट बन्द कर लिये। दसवें दिन मैंने दसवें द्वार को प्रकाशमान कर दिया अर्थात् नवद्वार बन्द कर के ध्यान-दीप जला कर दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) को ज्योतिर्मय कर दिया। एकादशी को चन्द्र (सहस्रार) में लय हो गई। बारहवें दिन द्वादश मण्डल ब्रह्मरंध्र में दिशा-भ्रम को नियन्त्रित किया। तेरहवें दिन गंगा-यमुना-सरस्वती एवं इड़ा-पिंगला-सुषुम्णा की त्रिवेणी में ाया स्वच्छ कर दी। चर्तुर्दशी को चौदह भुवनों पर अधिकृत हुई और पूर्ण पंचदशी (पूनम) को चन्द्रोदय होते देखा। प्रतिपदा को मैंने भोगी शरीर फिर संभाला। तब मैं सब कल्पना (चिन्तादि) त्याग कर निश्चिंत हो बैठी—यही मेरी मूर्ति-पूजा है।

127

ओंकार यलि लयि ओनुम्,

वुह्.य कोरुम् पनुन पान्।

षुह्.-वोत त्राविथ सथ् मार्ग रोटुम्,

त्यलि लल् ब्व वाच़्स प्रकाशस्थान ॥[2]

जब ओंकार को मैंने अपनी ओर अनुरक्त कर लिया, मुझे अपने आप को एक अंगारे की तरह तपाना पड़ा—अर्थात् योगक्रिया द्वारा अपने शरीर को आंच दे कर मैंने विचारों को प्रणव पर केन्द्रित किया, तभी मैं 'उसकी' बन गई। और जब षण्मार्ग (छः चक्र या शक्ति के छः चरण) त्याग कर मैंने सन्मार्ग का सातवां पथ (सहस्रार-चक्र) धारण किया, तब मैं 'लल' प्रकाशस्थान तक जा पहुंची।

---

1. कोई भी देव-यज्ञ या पितृ-यज्ञ (श्राद्धादि) करते हुए कश्मीर में यजमान कुशा की एक मुद्रा हाथ की अंगुली (अनामिका) में धारण करता है। इसको पवित्र कहते हैं। इसका आशय पावन हो कर शुभ कार्य आरम्भ करना है।

2. लामकान- (देशकाल-निरपेक्ष ज्योतिस्थन)

128

| |
दम-दम ओम्कार मन पर्नोवुम्,
|
पानय परान त पानय बोज़ान् ।

सूऽहं पदस् अहम् गोलुम्,
| |
त्यलि लल बो वाच़्स प्रकाशस्थान³ ॥

हर क्षण मन को ओंकार का पाठ कराया । स्वयं ही पढ़ती रही, स्वयं ही सुनती रही । 'सोअहम्' पद में से 'अहं' को समाप्त किया अर्थात् 'उस और मैं' के भेदभाव को मिटाया—अहं-तत्व मिटा कर शिव-रूप ही बन गई—तब मैं 'लल' प्रकाशस्थान तक जा पहुंची ।

129

| |
ग्यानकि् अम्बर पूरिथ तने,
| |
यिम् पद ललि दपि् तिम हृदि-आंख् ।
| |
कारणि् प्रणवकि् लय कोर लले,
| | |
च़्यथ ज्योत कासनि् मरनुजि् शाँख ॥

अपने तन पर ज्ञान के अम्बर (वस्त्र) धारण कर के उन पदों (शिक्षापूर्ण वाक्यों) को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर, जो 'लल' कह गई है । 'प्रणव' के कारण 'लल' ने चित्त-ज्योति (आत्म-प्रकाश) में अपने आप को लय कर दिया । (इस तरह) वह मृत्यु का भय दूर कर पाई ।

पाठभेद : 1. लामकान (देशकाल-निरपेक्ष ज्योतिस्थान)

130

मकुरस ज़न मल् चो़लुम मनस्,

| | | |

अद म्य लबम् जनस् ज़ान ।

सुह् यलि ड्यूंठुम निशि पानस्,

|

सोरुय सुय तय ब्व नो केंह् ।।

जब मेरे मन का मैल ऐसे मिटा जैसे दर्पण से मैल, तब कहीं मुझे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ । और जब उसको मैंने अपने निकट देखा—(तो यही पाया कि) वही सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं ।

131

| | |

अँद्रिय आयस च् ंद्ररुय् गारान्,

ग्वारान आयस् हिह्यन् हिह् ।

| |

चु.इ हय नारान् चु.इ हय नारान्;[1]

|

चु.इ हय नारान् यिम कम् विह् ।।

भीतर (अन्तर्मन) से मैं चन्द्र ढूंढ़ते बाहर आई । मैं ऐसों को ढू ंढ़ती रही, जो समान आकार-प्रकार के हों अथवा मेरी खोज का रहस्य यह खुला कि सम-स्वभाव ही परस्पर मिल जाते हैं । यदि तू ही नारायण-रूप में सर्वत्र व्यापक है तो यह रूप-भेद कैसा ?

| | |

पाठभेद : 1. चु.इयैनारान् चु.इ अथ दारान ।

|

चु.इयै मारान् यिम् कम् विह् ।।

(पाठभेद)—यदि तू ही नारायण है तो तुम्हारा ही हाथ पसार कर मांगना और तुम्हारे ही हाथों मारा जाना—यह सब वैचित्र्य क्या है ! जब कोई और है ही नहीं, तो यह नाम-रूप भेद कैसा ? अथवा तू ही स्रष्टा, धारणकर्त्ता (पालक) व संहर्त्ता है—यह सब क्या है ?

132

पानस् लागिथ रोवुख म्य चह्,
म्य च़य छ़ाण्डान् लूस्तुम द्वह् ।
पानस मंज़यलि ड्यूंठुख म्य चह्,
म्य च़य त पानस ज़ुतुम् छ़ोह ।।

अपने आप में तन्मय हुई तो मैं तुम्हें खो बैठी । (तब) तुम्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मेरा दिन भी अस्त हो गया । (परन्तु) मैंने ज्यों ही अपने भीतर तुम्हें ही देखा तो मैं मस्त होकर तुम्हारे साथ अटखेलियां करने लगी (आरम्भ में 'लल' आत्मा और परमात्मा को अलग-अलग समझी । जब उसे एकत्व (अभिन्नत्व) का बोध हुआ तो वह आनन्द-विभोर हो उठी ।)

133

च्यथ् नोवुय् च़न्द्रम नोवुय्,
जलमय ड्यूँठुम् नवम नावुय् ।
यन प्यठ ललि म्य तन्-मन् नोवुय ।
तन लल बो नवम नव़इ छ्यस् ।।

चित्त (चिदात्मा) भी नया और चन्द्र भी नया । मैंने देखा कि यह सब जलमय (प्रकृति-दर्शन) क्षण-क्षण नित-नया है । जब से मैं 'लल'—ने तन-मन को परिमार्जित

कर नित-नूतन रखा, तब से मैं नई-की नई रही। (सम्भवतः यहां 'लल' बौद्धमत के प्रवाह्मय अनादित्व की ओर संकेत करते हुए कहती है कि आत्मतत्त्व अथवा शिवदृष्टि पर भूत-भविष्यत् की उपाधि नहीं व्यापती—वह सदा-सर्वदा नित-नूतन है।)

टिप्पणी : प्रकृति के दृश्य क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। चन्द्र प्रति क्षण नया है, बल्कि सारी सृष्टि भी, जो स्थिर और अपरिवर्तनशील प्रतीत होती है, बदलती रहती है, परन्तु मनुष्य है, जो भूत और भविष्यत् की स्थिति में रहता है, यद्यपि ध्यान से देखा जाये तो उसका ज्ञान भी बदलता रहता है, लेकिन मनुष्य देश-काल के बन्धन में फंसकर इस गूढ़ार्थ को समझ नहीं पाता।

134

यि यि करम् कोरुम् सुह् अर्चुन,
यि रसनि व्वचोरुम तिय् मन्थर।
युहै लोगमो दिहस पचुन,
सुय् यि परम् शिवुन तन्तर्॥

मैंने जो-जो कर्म किये, वह मेरी अर्चना थी, जो रसना (जीभ) से उच्चारण किया वह मन्त्र था। देह से यदि कोई काम मैंने लिया, वह था यही परिचय-प्रत्यभिज्ञा और यही परम् शिव के तन्त्र का सार-तत्व है।

135

अजपा गायत्री हम्स-हम्स ज़पिथ्,
अहम् त्राविथ सुय् अद रठ्।
यमि् त्रोव अहं सुय् रुद पानय,
बो न आसुन छुय् व्वपदीश॥

अजपा गायत्री-मंत्र का प्रत्येक सांस में जाप कर। अहंभाव को त्याग कर 'उसी' अर्थात् ब्रह्म-तत्व को धारण कर। जिसने 'अहं' को छोड़ दिया, वही वास्तव में 'स्व' (आत्मभाव) के रूप में स्थिर रहा। सीख की बात है 'अहं' का अभाव—तदाकार होना।

136

आसुस कुनिय तय सॉपनिस स्यठाह्,
नज़दीख आसिथ गयस् दूर।
ज़ाहिर-बातिन कुनुय ड्यूंठुम्,
गयस् स्यथ्-च्यथ च़ुवंज़ाह च़ूर॥

मैं एक ही थी और अनेक हो गई (एकोऽहं बहुस्यामः)। निकट हो कर दूर जा पड़ी। भीतर और बाहर (व्यक्त-अव्यक्त) उसी एक (शिवतत्व) को देखा। चौवन चोर (विषय-वासना-रूपी लुटेरे) मेरा सब कुछ खा-पी कर और मुझे धोखा दे कर चले गए।

137

ओर ति पानय् योर ति पानय्,
पोत-वाने रोज़ि न जाँह्।
पानय गुप्त् त पानय ग्यानी,
पानय पानस् मूद् न जाहं॥

उधर भी स्वयं है और इधर भी वही स्वयं है अर्थात् जिधर देखती हूं उधर वह ही वह है, वह कहीं पीछे रहने का नहीं। स्वयं ही गुप्त है तो स्वयं ही ज्ञानी। स्वयं वह अपने रहस्य का स्वामी है—वह कभी मरा नहीं—अर्थात् वह अमर है।

138

ओर ति पानय् योर ति पानय्,

पानय पानस छु न मेलान ।

प्रथम अच्यस मा मुले दानिय्,

स्वय् हा मालि छय् आश्चर-ज्ञान ।।

आप ही उस ओर भी है और इस ओर भी । ऐसा होते हुए भी 'स्व' स्व से नहीं मिलता । पहले तो इनमें रत्ती भर भी (कुछ) अन्तर नहीं । हे तात ! यही आश्चर्य है, जिसका तुझे ज्ञानार्जन करना है ।

139

कुस् हा मालि लूसुय् न पकान पकान्,

कुस् हा मालि लूसुय् न व्वलगान समीर ।

कुस् हा मालि लूसुय् न मरान् त ज्यवान्,

कुस् हा मालि लूसुय् न करान् न्यंद्या ।।

कौन है, जो चलते-चलते थक-हार न गया ? कौन है, जो सुमेरु पर्वत को लाँघते-लांघते अस्त न हुआ । कौन है, जो जन्म-मरण के फेरों से नहीं हारा और कौन है, जो निंदा करते बाज़ न आया ?

140

जल् हा मालि लूसुय् न पकान्-पकान्,

सिरयि लूसुय् न वोलगान् समीर ।

चन्द्रम लूसुय् न मरान् त ज़्यवान्,

मनुष्य लूसुय् न करान् न्यंद्या ॥

जल चलते-चलते थका नहीं। सूर्य सुमेरु लांघते-लांघते अस्त न हुआ। चन्द्रमा मरते-जन्मते (घटते-बढ़ते) चुका नहीं और मनुष्य निंदा करते बाज़ नहीं आया।

141

नाभिस्थानस् चि़त जलवञी,

ब्रह्मस्थानस् शिशिरुन म्वख्।

ब्रह्माण्डस छय नद् वहवञी,

तवय् तुरुन हुह् हाह् गव तोत ॥

नाभिस्थान में तो चिता (जठराग्नि) धधकती रहती है। और ब्रह्मस्थान (शीर्ष-स्थल) में शिशिर का मुख (शीत चंद्र) है। ब्रह्माण्ड में नद (प्राणापान-रूपी नदी) प्रवाह्मान है, इसलिए 'हुह्' (प्राण) अर्थात् शीर्षस्थान का शीतल श्वास 'हाह्' अर्थात् नाभिस्थान का गर्म उच्छ्वास बन जाता है।

142

आँचार हाँज़नि हुन्द् गयाम कनन्,

नदरि् छिव त ह्ययिव मा।

ति बूज़ त्रुक्यव तिम् रुदि् वनन्,

च्̣नुन छुव त चीनिव मा ॥

आचार झील की मछियारिन की आवाज कानों में पड़ी। कमल-डंठल बिकाऊ हैं, लेने हैं तो लो। यह बात जब बुद्धिमानों ने सुनी तो वे कहने लगे, समझने की

बात यही है—पर समझोगे नहीं । इस 'वाख' में श्लेष का आधार लेकर बात समझाई गई है—'आंचार हांज़नि' से तात्पर्य है—आचार शक्ति और 'नदरि्' से अभिप्रेत-नश्वर सांसारिकता है ।

143

आँचारि् बिचारि् व्यच़ार वोनुन,
प्राण त रुहुन ह्.ययिव मा ।
प्राणस् बज़िथ मज़ा च़हुन,
नदरि् छिव त ह्.ययिव् मा ।

(इस वाक्य में 142 वें 'वाख' का और अधिक स्पष्टीकरण है)—

आचारवाली ने विचार की (चिन्तनीय) बात कही—प्याज़ और लहुसन मोल तो नहीं लेना ?—श्लेषार्थ में 'लल' कहती है—प्राण और अपान (योगाभ्यास) का सौदा कर लो। 'प्राणस् बंज़िथ' अर्थात् प्याज़ का छौंक लगाकर स्वादिष्ट सबज़ी बनाओ। (अध्यात्मवाद से) प्राणायाम की क्रिया द्वारा वास्तविक आनन्द पाओ । संसार नश्वर है—इसमें उलझना नहीं ।

144

कुस् बब् तय क्वच माजी,
कमी लाजी बाजीबठ् ।
कालि् गछ़ख् काँह ना बब् काँह नो माजी,
ज़ानिथ कव लाजिथ बाजीबठ् ।।

कौन बाप और कौन मां ! किसने तेरे साथ गठजोड़ किया । कल को तू चला

जायेगा—न कोई बाप होगा न कोई मां होगी—यह जानकर क्यों लाग-लगाव बढ़ाता है।

145

काली सथ् क्वल गछ़न पाताली,
अकाली ज्ञल् माल वर्षनि् प्यन् ।
मामस् टाकि् तय मसकिय प्याली,
ब्रह्मण त च़ाली इकवट ख्यन् ।

कालक्रम से ऐसी कुस्थिति होगी कि (दुष्कर्मों के कारण) सप्तकुल रसातल को जायेंगे। तब असमय वृष्टि हुआ करेगी। तब ब्राह्मण और चाण्डाल (कुकर्मी) एक साथ मांस-मदिरा का खान-पान करेंगे।

146

अटनचि् सन् दिथ थावन् मटन्,
लूभ ब्वछि् बोलन् ज्ञानचि् कथ् ।
फटि़ फटि़ नेरन् तिम् कति वटन्,
त्रुकय मालि छुख पूर् कड़् पथ ।।

जो लोग इधर का माल चुरा कर उधर कर देते हैं और लोभ के मारे ज्ञान की बातें बखानते हैं—वे लोग दिखावा-भर करते हैं—उन्हें कुछ संचित नहीं होता। यदि तू प्रबुद्ध है तो ऐसे मामलों में पीछे हट।

147

संसार नामि् ताव तचुय,
मूढ़न किच़ुय तावन आये ।

ग्यान-मुद्रा छय यूगियन किच़ य,

सु यूग-कलि किञ् परज़न आये ॥

संसार नाम का तपा हुआ तवा मूढ़ों के लिए तपाया हुआ है। ज्ञान-मुद्रा योगियों के लिए है और वह (ज्ञान-मुद्रा) योग कला द्वारा पहचानी जाती है।

148

सोबूर छुय ज़्युर मरच़ त नूनय,

ख्यन ट्र्याठ त ख्ययस कुस्।

सोंबूर छुय स्वनसुन्द टूरुय,

म्वल छुय् थोद त ह्यस् कुस् ॥

सब्र (धैर्य) ज़ीरा, मिर्च और नमक सदृश्य है — खाने में कड़ुआ। खाये तो कौन! अर्थात् कड़ुएपन के कारण लोग इसका प्रयोग करने में हिचकते हैं। सब्र सोने की थलिया-सा है —इसका मोल ज़्यादा है, खरीदेगा तो कौन! अर्थात्, धैर्य कष्टसाध्य और दुर्लभ है, इसके लिए कष्ट सहना और साधन-सम्पन्न बनना अनिवार्य है।

149

साह्यब् छु बिहिथ पानय वानस्,

सारिय मंगान कॅछाह् दि।

रोट नो काँसि हुन्द् राछि् नो वानस्,

यि च़य गछि़य् ति पानय नि ॥

साहिब (ईश्वर) स्वयं दूकान लगाये बैठा है। सभी कुछ-न-कुछ देने (उनसे लेने) की याचना करते हैं। (यहां) किसी की रोक-टोक नहीं। दूकान का कोई प्रहरी नहीं, जो तुझे चाहे, स्वयं ही ले जा।

150

संसारस् मंज बाग् कथ शायि रोजय,

रोजि परम शिव शम्भू अघूर।

ल्वलि मंज् बाग बोय ललनावन्,

जिगरस मंज बाग करस् गूर-गूर्॥

संसार के मध्य मैं कहां किस तरह रहूं। (यहां तो) परम् शिव अघोर शम्भु ही रहेगा। मैं उसीको अपनी गोद में हिला-डुला लूंगी और अपने हृदय के झूले में उसे झुलाऊंगी।

151

हह निशि हाह् द्राव शाह् क्या गोवुय,

हहस त हाहस शाह् च्ुय जान्।

रुह निशि मोर द्राव् क्याह् वुछुय,

क्याह् रुद् बाकी क्याह् गव फ़ान्॥

श्वास से उच्छ्वास निकला—यही तो सांस का आना-जाना है। 'हह' (प्राण) 'हाह' (अपान) ही को तू श्वासोच्छ्वास मान। आत्मा से शरीर अलग हुआ तो दिखाई क्या दिया? भला (इस समय) बाकी क्या रहा और क्या नष्ट हुआ?

152

दोद क्या जानि यस नो बने,

गमकि जाम हा वलिथ तने।

गर-गर फीरस व्ययम् कजे,

ड्यूंठुम न कांह ति पननि कने ॥

जिसपर बन न आई हो—वह दर्द क्या जाने ! गम (वेदना) का बाना तन पर धारण कर के मैं घर-घर भटकी और हर जगह मुझपर पत्थर बरसे। किसी को भी मैंने अपने पक्ष में (या अपनी तरह का) नहीं पाया।

153

शहनि हुन्द् शिकार पाज़ कव ज़ाने,

हाँठ् कव ज़ाने पोतरय् दोद।

शमहच कदर लश कति ज़ाने,

मछि् कति ज़ाने पोंपरचि् गथ् ॥

शेरनी का शिकार बाज़ को क्या मालूम ! बांझ को पुत्र-वात्सल्य (मां की ममता) का क्या ज्ञान ! दीपक की क़द्र लकड़ी (देवदारु जाति का काष्ठविशेष) को क्या मालूम ! मक्खी भला पतंगे की गति (बलि) कैसे जाने।

154

व्वथ्, राणि् अर्चुन सखर्,

अथि अलपल वखुर ह्यथ् ।

योदवनय ज़ानख परम पद,

अक्षर हि शीखर स्य शीखर ह्यथ् ॥

उठ देवी। पूजा की तैयारी कर। पूजा की सम्पूर्ण सामग्री हाथ में ले।

यदि परम्-पद अक्षर को जान ले तो तांत्रिक क्रियावन्तों के साथ बैठकर उसका सेवन कर।

155

लराह् लज़म मंज़् मादानस्
अँदि् अँदि् करिमस तकिय त गाह्
स्व रोज़ि यति् तय ब्व गछ़् पानस्,
वोऩ् गव वानस् फालव दिथ ॥

मैदान के मध्य में मैंने एक भवन-निर्माण किया। उसको चारों ओर से मैंने यथेष्ट रूप से संवारा-सजाया। वह (भवन) यहीं रह जायेगा और मैं चली जाऊंगी। मानो दूकानदार दूकान बढ़ा कर चला गया।

टिप्पणी : संसार की असारता का वर्णन है।

156-157

स्वयि कुल् नो द्वद सूति् सगिज़े,
सर्पिणि ठूलन् दिज़ि नो फ़ाह्।
स्यकि शाठस फल् नो वविज़े,
रावरिज़ि न कोम-याज्यन् तील ॥[1]
मूढ़स् ज्ञानच़् कथ नो वनिज़े,
खरस् गोर दिन राविय् दोह्।
युस युथ करिय सु त्युथ् स्वरे,
क्रे करिज़ि न पनुनय पान ॥

बिच्छू घास को दूध से सींचना नहीं, सर्पिणी के अण्डों को कभी न सेना। बालू की पुलिन पर बीज न बोना, भूसे की नानखताई[1] पर तेल बर्बाद न करना। मूढ़ को ज्ञानोपदेश न करना। गधे को गुड़ देने से तुम्हारी मेहनत अकारथ जायगी। जो जैसा करे, वह वैसा भरे। तुम्हें अपने-आपको कुएं में धकेलना नहीं चाहिए।

158

आरस नेरि न मोदुर शीरै,

न्यर्-वीर्यस् नेरि न शूरानाव् ।

मूर्खस पृणुन छुय हस्तिस कशुन्,

यसौ मालि दान्दस् ब्यहा घाव ॥

आलूबुखारा में से मीठा रस नहीं निकलता। निर्वीर्य शूर नहीं बन सकता। मूर्ख को समझाना हाथी को खुजलाना है अर्थात् बेकार है। जिस बैल को सुस्ती और आलस्य ने धर दबोचा, वह काम से गया।

159

बबरि लंगस् ग्रुक् नो मरे.

ह्रन्जि् बस्ति कोफूर नेरि न जाह् ।

मन योद ग्वारहन् फेरिय ज़ेरे,

न त शालंटुगे नेरिय क्याह् ॥

रैहान (मरवाहे) की शाखा से सुगन्ध कभी नहीं जाती। कुत्ते के चमड़े से कपूर की सुबास कभी नहीं आ सकती। यदि तू उस (परम्-पद अक्षर) का ध्यान मन में करे तो वह सहज ही (तेरी ओर) प्रवृत्त होगा। नहीं तो, गीदड़ की तरह चिल्लाने मात्र से कोई लाभ नहीं।

1. याजि—चावल के आटे की बनी हुई प्याले के आकार की विशेष रोटी, तेल में पकाई जाती है।

टिप्पणी : दिखावे की रीतियों का खण्डन ।

160

त्यम्बुर प्ययस् कव नो चाजिन्,

मस-रस[1] कव अह नाजिन् गव ।

शान्त्यन् हंज़ क्रय तोल-म्वल वाजिन्,

अंदरि् गाह् यलि न्यबर प्योस् ॥

(अध्यात्म-बोध की) एक चिंगी भर उसपर पड़ी, पर अफसोस! वह सह न पाया । मधुरस क्यों उसकी ऐसी नाड़ियों (वातनलिका) में गया, जिसका उसे कोई लाभ नहीं हुआ—अर्थात् उसकी क्षुधा ज्यों-की-त्यों बनी रही ।

(पाठभेद) मन्सूर को अध्यात्म-बोध की तनिक-सी आभा मिली, पर वह उसे सहन न कर सका ।

(ऐसे मनुष्य ने) शान्तों (सन्त जनों) की क्रिया का आदर-मान ही घटा दिया ; क्योंकि भीतर का प्रकाश उसके अन्तर्मन से बाहर निकल आया ।

161

असी आसि् त असी आसौ,

असिय् दौर करि् पतवथ् ।

शिवस सोरि न युन त गछुन,

रवस सोरि न अतगथ् ॥

1. मनसूरस—मन्सूर एक पहुंचे हुए सूफी हो गुज़रे हैं जिन्होंने आत्म-बोध पाकर 'अन्-अल् हक़' अर्थात 'सोऽहमस्मि' का नारा दिया । कहते हैं, कठमुल्लाओं ने उसपर लादीनी (नास्तिकता) का आरोप लगाकर उसे सूली पर चढ़वाया ।

हमीं थे और हमीं रहेंगे । पुरातनकाल से आज तक सदैव हमारा ही दौर (युग) चला आया है । हमारा यह अनवरत क्रम चलता रहेगा । शिव का आवागमन कभी न चुकेगा और सूर्य का उदयास्त कभी समाप्त नहीं होगा ।

टिप्पणी : इस 'वाख' में लल ने मानवता की शाश्वत श्रेष्ठता का निरूपण किया है। शिवाद्वैत की दृष्टि से इसका रहस्य गहन और विशद है ही, लौकिक अर्थ भी आशावाद से भरा पड़ा है। मनुष्य आदिकाल से चला आया है, अनन्त तक चलता रहेगा । अत. जीवन से पलायन अनुचित है ।

———

कश्मीर में ललद्यद के समकालीन एक और उच्च कोटि के सूफी हुए हैं—शेख नूरुद्दीन वली। इन्हें लोग श्रद्धा से नुन्द ऋषि कहते हैं। वे च.ार-शरीफ में रहते थे। यहां पर उनकी ज़ियारत (खानक़ाह) है। कहा जाता है कि नुन्द ऋषि और उनके एक मुख्य शिष्य बाबा नसरुद्दीन प्रायः ललद्यद के साथ परमार्थ-सम्बन्धी विषयों पर संवाद करते थे। ऐसे संवादों का उल्लेख 'नूरनामा' और 'ऋषिनामा' में पाया जाता है। यहां पर एक का उद्धरण प्रस्तुत है :—

बाबा नसरुद्दीन :

सिर्यस् ह्यू न प्रकाश कुने,
गंगि ह्यू न तीरथ कांह्।
बायिस ह्यू न बांदव कुने,
रन्नि ह्यू न स्वख् कांह्॥

सूर्य जैसा प्रकाश अन्यत्र कहीं नहीं। गंगा जैसा और तीर्थ कोई नहीं। भाई-सा बांधव कोई नहीं (और) पत्नी जैसा कोई सुख नहीं।

शेख नूरुद्दीन (नुन्द ऋषि) :

अछ्यन ह्यू न प्रकाश कुने,
क्वठ्यन् ह्यू न तीरथ काँह्।
चंदस ह्यू न बान्दव् कुने,
खनि ह्यू न स्वख कांह्॥

नेत्रों जैसा प्रकाश कहीं नहीं। टांगों के समान कोई तीर्थ नहीं। अपनी जेब जैसा कहीं कोई बंधु नहीं और (ऊनी) चादर जैसा कोई सुख नहीं।

ललद्यद :

मायि ह्यु न प्रकाश कुने,[1]
|
लयि ह्यु न तीरथ कांह।
|
दयस ह्यु न बान्दव कुने,
|
भयस ह्यु न स्वख कांह्॥

भक्ति-रस से बढ़ कर कोई प्रकाश नहीं। शिवतत्व में लीन होने अथवा परम-ज्ञान जैसा कोई तीर्थ नहीं। दय (शंकर) जैसा कोई बंधु नहीं और (प्रभु के) भय से बढ़ कर कोई सुख नहीं।[2]

पाठभेद—1. मयस ह्यु न प्रकाश कुने,
पयस ह्यु न तीरथ कांह।

2. एक जनश्रुति यह भी प्रसिद्ध है कि यह संवाद ललद्यद और उनके गुरु सिद्ध-मोल के बीच हुआ था। पहला और अन्तिम वाख लल का और बीच वाला गुरु का है।

परिशिष्ट

अप्रचलित (पुरातन) शब्द-सूची-अर्थसहित

यहां पर उन अप्रचलित (पुरातन) शब्दों की अर्थसहित सूची दी गई है, जो इन वाक्यों में प्रयुक्त किये गये हैं, मगर टिप्पणी में स्पष्ट नहीं किये गये हैं :—

वाख सं०	शब्द	अर्थ
2	सुमन् सोथ	पुलों सहित सेतु
3	देह् काड	देह का सीधापन
4	हारिंजि	कमान
	अबख	अनजान, नौसिखिया
	राज़धानि्	राजमहल, भवन
5	लोह-लंगर	लोहे का लंगर, गृहस्थ सांसरिक व्यवहार जो दुनिया से बांधे रखता है
	निज़ स्वरूप	(निज) अपना वास्तविक आत्म-रूप
6	दशि बोज़	मूर्ख
8	व्वक्षुन् करिथ	खुरच कर, साफ कर के

वाख संख्या	शब्द	अर्थ
9	गासिल	कचरा
10	दिशि	दिशा
	अन्ति	अन्ततः
11	अछ़यन्	अटूट, अविच्छिन्न
12	अर्जुन (बर्जुन)	मेहनत-मजदूरी
19	मार्ग	पथ, रास्ता
	लामा चक्र	(मातृका-मण्डल) शक्तियों का समूह
	क्रय-दार	क्रिया धारण करके
20	बम	खाल उधेड़ना
21	तुरुग	घोड़ा, अश्व
22	स्पर्शि	चीन्हे, महसूस न करे
	नेछ्	अच्छा
23	गगन	नभ
	भ्रमवोन	घूमता हुआ, भ्रमण करता हुआ
	निमीष	झपकी भर में
	यूज़न	योजन (3 मील)
	पखचि्	पहिये
24	रसायन गटिथ	रसायण बना के
	नाडि-दल	नाड़ियों का समूह
32	अजिने बछ़	अंधे की तरह हाथ-पैर मारना

वाख संख्या शब्द		अर्थ
34	हल कोर्मस	बल दिया
	रस निश् ति	शक्ति से बढ़कर भी
36	न्यछ् तुर त साथ्	नक्षत्र और मुहूर्त्त
	सलिलस	जल, पानी
	लवण	नमक
	दुर्लभ	दुर्लभ, दुष्प्राप्य
37	क्रये	कर्त्तव्यकर्म
	धारून त पारुन	व्रत और रोज़े धारण करना
	काय	शरीर
40	च़लच़ यता	चंचल चित्त
	चिन्थ	चिन्ता
	ख्योद् हरि	क्षुधा मिटे
	को-ज़ननि्	कौन जाने, कैसे जानेगा,
41	वटा	पत्थर
	दिवुर वटा	देवल (मंदिर) का पत्थर
	हूट	बुद्धिमान, विद्वान्
	संगाठ	मेल, एकीकरण, जोड़
	ज़ल	जल
43	सद् भाव	सच्चे हृदय से
	नित्य	प्रति-दिन, नित
	साद	स्वाद, शाश्वत आनन्द

वाख संख्या शब्द	अर्थ
|	
प्यजे	(पड़ना) पड़े
अक्रयी	अक्रयी कुछ न करने वाला, कर्त्ता होकर भी कर्मबंधन से मुक्त
44 लज्	लज्जा, लाज
शीत	ठंड
निवारी	मिटाये, निवारे
44 तृन	घास
आहार	खाद्य
अचीतन	निर्जीव, अचेतन
सचीतन	जानदार, सचेतन
45 निष्पथ	विश्वासहीन, पथहीन
|	
46 अबलि	अबला को
|	
भवरूज	जीवन के रोग, भव (सांसरिक) रुज (रोग) अथवा सांसरिक दुख
49 जायुन	अस्त-व्यस्त करना
|	
अठ् कडन्य्	ऊपर उठाकर बाहर निकालना
प्रनिथ	कहकर
50 चर्मन	चर्म
फलिही सोव	भरपूर फल मिलता
|	
कन्य् दांदस	बादामी रंग के बैल को
|	
51 अव्यस्तार्य	निश्चिन्त, अविस्तारी (व्यवहारहीन)

वाख संख्या	शब्द	अर्थ
52	सिखिम	सूक्ष्म
	|	
	अभ्यासकि	साधना के
	न्यश्चय गोम	निश्चय हुआ
53	केसर	सिंह
	प्रनुम	पढ़ा
54	खार्युक्	अनसधा घोड़ा (चंचल मन)
55	कुसुमौ	फूलों द्वारा
	|	
	अमलान्य्	अमलिन, निर्मल
56	निन्दा	निन्दा
	|	
56	बोल पडिन्यम्	अपशब्द कहें
	वासा	वास, स्थान
	खीद	खेद, दुःख
	मुकुरस	दर्पण को
	सासा	राख, भस्म
58	पशिथ	देखकर
	कोर	काना
58	श्रुतवोन	सुनता हुआ
	तत्व-व्यदिस	तत्ववेत्ता को, तत्व वे 36 क्रम हैं, जिनसे (शैव मतानुसार) संपूर्ण सृष्टि बनी है।
59	कन्द्यौ	देहधारी, मनुष्यों ने
	कन्दे	शरीर
	व्वलास	सजाना-संवारना
60	अम्बर	वस्त्र
	स्व-पर	जो सर्वोच्च (पर) है, है वह अपनी ही वास्तविकता, अपनी ही आत्मा (पर)

वाख संख्या	शब्द	अर्थ
63	विभव	वैभव, राजत्व
65	दन	धनवाली, सौभाग्यवती
66	जीवन्त्	जीते जी
68	शील त मान	चलन और ख्याति
	मलि्	मल्ल (शक्ति-संपप्न)
69	हुतवाह	अग्नि जलती हुई
	वूर्धागमन	ऊर्ध्वंगमन, नभ-भ्रमण
	पूरव चरिथ	पैरों पर चलते हुए
	काठ-देनि	काष्ट-धेनु
	सकोल	सकल, सारा
70	वत नाशि्	बटमार
	मन्मथ्	काम
	व्योन्दुन	मानना
	स्वास	छार, राख
71	मने	जान-बूझकर
	विषय	वास्तविकता (मूल बात)
	द्रुव	ध्रुव, अटल
72	रंगस्	स्टेज पर
	वैर	शत्रुता
73	कल्पन	कल्पना, निरर्थक विचार
74	सुरगुरनाथ	देवताओं के स्वामी महादेव
	अद्वय	द्वित्वहीन
75	सदाय	सदा, प्रतिदिन

वाख संख्या शब्द		अर्थ
	बूदुम्	बाधा दी, दुख दिया
	सन्देह	सन्देह, शक
77	गेह्	घरबार
	त्यजि्	तजकर
77	व्यफोल	निष्फल
	वास	आराम का स्थान
	कन्यौ	कइयों ने, कुछ लोगों ने
	स्वास	श्वास
78	कलन	चाह, कल
	काल जालि्	काल-पाश, समय का जाल
	व्यंदिव गेह्	घरबार बरतो
	अमोल	मलहीन
79	विषमस्	पेचदार को, विषम को
	पाशस	जाल को
	अबोदि्	बुद्धिहीन
83	प्रकथ	प्रकृति, भौतिक या बाह्य सृष्टि
88	ब्रह्मह्‌चुय गच	ब्रह्महत्याएं(कन्या-जन्म ब्रह्महत्या-जैसा पाप माना जाता था गति, चाल)
91	वुदी	होशियार, सावधान
	अपुती	अपूत, अपवित्र
92	गू	गेहूँ
93	स्रगाल	गीदड़, शृगाल
	सकली	सारे
	न्यंगि	बार
95	ड्रिंगि	सोये, लेट जाय

वाख संख्या	शब्द	अर्थ
	|	अथक, सदैव
	वतरि	हलके-हलके पचे, बहे
	तेली	
	/	
	होन्ज़म्	सूखना, शेष रहना, भूखों रहना
96	अक्वल	जो 'क्वल' अर्थात् संपूर्ण सृष्टि से परे हो, परिपूर्ण
	|	
	दाडि्	दृढ़, सदा रहने वाला
	|	
	पंचि यंदि्	पचेन्द्रियों का
97	अश्व-बार	घुड़सवार
	च्यड्यस्	चढ़ेगी
98	अनाहत	ओंकार, अनश्वर स्वर (अक्षर) अनहद
	ख-स्वरूप	आकाश-स्वरूप, अरूप, सर्वव्यापक
	|	
	शुन्याय	शून्यवासी, देशकालातीत
	वर्ण	रंग, जाति
99	जननि	जननी, माता को
	ब्वदरस	उदर को, गर्भ को, बच्चेदानी को
	क्लेश	क्लेश, दुख
	द्वार बज़नि	द्वार पर प्रतीक्षा करने
100	शैल	शिला
	पटिस	समतल सड़क पर
	पृथवुन	पृथवी का
101	मातृरूप	माता के रूप में
	पय	दूध, प्यार करना
	विशेष	अपने विशेष
	माया-रूप	माया-रूप में, नारी दुखदायिनि

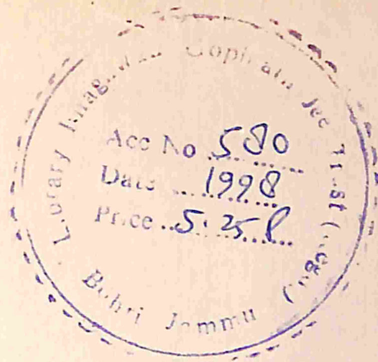
वाख संख्या	शब्द	अर्थ
102	वरुण	जल का देवता
104	ज़्वसि	खाँसे
107	बान	भानु, सूर्य
	भूर्भूवः स्वः	त्रिलोक, भूमि, आकाश व अवकाश भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक जगत
	व्यसर्जिथ	विसर्जन करके
108	अभ्यासि्	साधना से
	सव्यकासि्	विकासमय, विस्तारवान, संपूर्ण सृष्टि
	लयि वुथू	लय, मेल, नाश होना
	सगुन...	सगुण (अर्थात् सारी सृष्टि गगन से मिली और शून्य में विलीन हुई)
	चॖटा	ध्वनि कर के, आवाज दे कर
	अनामय...	व्याधिहीन, शून्य भी मिटा और शेष रहा मात्र पूर्ण ब्रह्म
109	क्वल	सारी सृष्टि 36 तत्वों से बनी
	मानस	मन को
	मुद्रि	मुद्राएं (हाथों और अंगुलियों की चेष्टाएं और रूप जो पूजा के समय बनाई जाती हैं)
	प्रवीश	प्रवेश
	ग्वति-ये	बचे, शेष रहे
110	ध्येय	ध्यान करने योग
	सर्वक्रयी	सब कुछ करने वाला, स्रष्टा
	अन्वय	सच्चाई, आशय
	लयि	(प्रलय)

वाख संख्या	शब्द	अर्थ
	पर	उत्तम, सर्वोपरि, ईश्वर
	|	
	पशिथ	देखकर
111	...सलिल...	जल (ठंडा हुआ और हिम बना)
	...हिमि...	हिम (बर्फ) विभिन्न होते हुए भी एक ही (वस्तु)
	बाति	चमकना
	सब समे	सारे समय
	च़राच़र	चराचर
112	जग पशा	जगत देख
	गरतस	सृष्टि को (बने हुए जगत को)
	स्रज़ख	पहुंचकर
	परिमान	माप-तोल, गुरुत्व
113	...हुनी आकार	चिन्ह मिटाया, 'ला' से मिलाया
	|	
114	ताटिस	विपदा में फंसी
116	शुन्	शून्य, आकाश
117	अनलायि	अनल (अग्नि) में
118	भेदी	परिचित, गुप्त बात का जानकार
	गिलि	कीचड़ को
119	द्वेष	नफ़रत, द्वेष
120	विदिस	जानकार को
	व्यंदिस	प्यारे को
	आगरै	आरंभ से ही, मूल से ही
	व्येदुय	जानकार
	|	
121	लय करम्	प्यार किया
122	पवनन	श्वासों को
	रंग...	सृष्टि परमात्मा से मिल गई
	कीवल	केवल, मात्र

वाख संख्या	शब्द	अर्थ
123	तपसी	तपस्विनी
	|	
124	थजि्	पवित्र स्थल
	नासिक...	नासिका से (प्रान धारण कर अनाहत रव (ध्वनि) ओमकार का जाप करना ।
	स्वयं	अपने आप
125	भूतल	धरती
	|	
129	हृदिणि्, आँख	हृदय में अंकित
	|	
	कार प्रणवकि्	प्रणाव (ओ३म) के कारण
134	अ.र्चुन	अर्चना, पूजा
	रसनि	रसना (जिह्‌वा) ने कहा
	प.र्चुन	परिचय पाया
135	खनि ह्.यू	ऊन के भारी पट्‌टू जैसी, लोई-सी
	बयस ह्.यू	ईश्वर-भय जैसा
139	ब्वलगान	पार करता हुआ
	समीर	सुमेरु पर्वत
150	अघूर	अघोर
153	शहनि हुंद	शेरनी का

———

वाखानुक्रमणिका



Acc No 580
Date 1998
Price 5.25
Bohri Jammu

5006
26/3/98

L6R4